अचल-ग्रन्थमाला का दूसरा ग्रन्थ:—

सफल साधना

लेखक

सेठ अचलसिंह

भूमिका लेखक

श्री० पुरुषोत्तमदास टंडन

और

पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-भण्डार,

आगरा

प्रकाशक—
महेन्द्र, संचालक
साहित्य-रत्न भण्डार,
ठंडी सड़क, आगरा

प्रथमवार
२०००

अक्षय तृतीया मई १९२५

मूल्य
बारह आना

मुद्रक—
भूपसिंह शर्मा,
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
बेलनगंज-आगरा

सेठ अचलसिंह एक्स-एम० एल० सी० आगरा

सेठ अचलसिंह एक्स-एम० एल० सी० आगरा

विषय-सूची

प्रथम खण्ड (आर्थिक)

१—हिन्दुस्तान की आर्थिक अवस्था का दिग्दर्शन ... ३
२—भारतवर्ष का पशु-धन ९
३—देशी व्यापार और व्यवसाय २६

द्वितीय खण्ड (राजनैतिक)

४ - जातीय जीवन ४३
५ - राज्य-सत्ता और शासन पद्धति ४९
६—संयुक्त-राज्य अमेरिका का शासन-विधान ... ६०
७—राष्ट्र-संघ ६३
८—भारत और चुनाव ६६
९—देशी राज्यों का कर्त्तव्य ७८
१०—अहिंसात्मक सत्याग्रह ९४

तृतीय खण्ड (धार्मिक और व्यवहारिक)

११—आत्म-विश्वास १०१
१२—सदाचार जीवन की शोभा है १०५
१३—सत्संगति का महत्त्व ११५
१४—सफलता के मूल साधन परिश्रम और साहस ... ११८

विषय		पृष्ठ
१५ - दान के क्षेत्र	... ...	१२७
१६ —ऋण का दुष्परिणाम और उससे बचने के उपाय		१३७
१७—किसी व्यक्ति के विषय में एकदम मत निश्चित कर लेना अनुचित है	... ...	१४२
१८—अनुभव की आवश्यकता	... ...	१४८
१९—मानव जीवन का महत्त्व और उसकी सार्थकता	...	१५३
२०—चार आश्रम और उनके कर्त्तव्य	... ...	१६७
२१—मनुष्य ही अपने भाग्य का विधायक है	...	१८१
२२—जीवन साफल्य सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त	...	१९१
२३—विमल-विचार	... ...	१९७

प्राक्कथन

सिद्धि के लिए साधको की आवश्यकता रहती है और साधना के बिना साधक कुछ नहीं कर सकते। यदि किसी देश में साधकों की आवश्यकता है तो भारतवर्ष मे। देश की उन्नति के साधक कोई विशेष वर्ग के लोग नहीं होते। सभी लोग अपने २ क्षेत्र में साधक हैं। मनुष्य चाहे कवि हो, चाहे व्यापारी, चाहे राजनैतिक नेता और सरकारी कर्मचारी, यदि वह अपना कर्त्तव्य पालन कर्त्तव्य बुद्धि से करता है तो वह देश की उन्नति का साधक और विधायक है। सर जगदीश चन्द्र बोस, डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागौर, सर रमन, महात्मा गान्धी, मिस्टर बिरला आदि सभी देश सेवक हैं। प्रत्येक देश का भविष्य उसमें रहने वाले मनुष्यों पर निर्भर रहता है, देश में सबसे बड़ी आवश्यकता अच्छे मनुष्य बनाने की है।

प्रस्तुत पुस्तक (सफल साधना) का उद्देश्य मनुष्यों के सामने उन साधनों को रखना है जिनके द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है।

पुस्तक में मानव जीवन के मुख्य मुख्य सभी क्षेत्रो का वर्णन है। इसके तीन भाग हैं आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक। अर्थशास्त्र और राजनीति यद्यपि मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक है तथापि उनका धर्म से विच्छेद नहीं हो सकता। भारतवर्ष की यही विशेषता है कि उसमें सब बातें धार्मिक दृष्टिकोण से देखी जाती हैं। हर्ष की बात है कि सुयोग्य लेखक ने भी धार्मिक दृष्टि

को प्रधानता दी है। इसके साथ उन्होने अपनी व्यवहार पटुता का भी परिचय दिया है। व्यापार मे जो धोखेबाजी होती है उसका लेखक ने घोर विरोध किया है। सत्य व्यापार की भी शोभा है, वह शोभा ही नहीं वरन् उसका जीवन है।

देशी राज्यो के सम्बन्ध में जो बातें कही गई हैं वह बड़ी मार्मिक हैं। देशी राज्य सामाजिक और व्यापारिक सुधार की आयोजनाओ की सफलता सिद्ध करने मे बहुत कुछ सहायक हो सकते हैं। राजा लोग मितव्ययता, प्रजा परायणता और चरित्र बल के आधार पर निर्भय बन सकते हैं। चरित्र राजा महाराजाओ और साधारण व्यक्तियो सभी के लिए आवश्यक है। लेखक ने सच्चरित्रता, सद्व्यवहार और परिश्रम के ऊपर बहुत जोर दिया है। यही सफलता की कुञ्जी हैं।

मनुष्य का मनुष्य ही शत्रु है, और मनुष्य ही मित्र है। हमको चाहिए कि हम अपने मित्र बनें। आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक पाठको मे सद्विचार और तदनुकूल क्रियाशीलता उत्पन्न करने में सहायक होगी।

—प्रकाशक।

"सफल साधना" पर कुछ शब्द

मेरे मित्र सेठ अचलसिंह जी ने अपनी "सफल साधना" के चिन्ह-स्वरूप १६२ पन्ने मेरे देखने के लिये भेजे हैं। मैंने उन्हे पूरा पढ़ा और उनसे लाभ और आनन्द दोनों उठाया।

पुस्तक साधारण जनता और विशेष कर युवकों के लिये विशेष उपयोगी है। किसी लेखक की सब सम्मतियो से सहमत होना किसी विचार करने वाले मनुष्य के लिये कठिन होता है। इस लिये सेठ जी ने जितनी बातें लिखी हैं उनमें दो चार से मेरा मतैक्य न हो तो यह साधारण बात है। परन्तु पुस्तक की बहुत अधिक बातों और शिक्षाओं से मै सहमत हूं।

आर्थिक और राजनैतिक खंडों से ऐसे लोगों के ज्ञान की वृद्धि होगी जिनको इन विषयों के विशेष अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला है। मेरा चित्त धार्मिक और व्यावहारिक खण्ड से विशेष प्रसन्न हुआ। प्रतिदिन की जीवनचर्या के लिये सेठ जी ने जो उपदेश दिये हैं उनसे अनुभव, स्वाभाविक सहानुभूति, सहृदय कल्पना और हृदय की उदारता का परिचय मिलता है। पढ़ते पढ़ते हृदय की ऊंची भावनाओं के तार बज उठते हैं।

मैं सेठ जी को उनकी इस 'सफल साधना' पर हार्दिक बधाई देता हूं। मेरा विश्वास है कि मेरे समान औरों पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

प्रयाग
२२ बैशाख संवत् १९९१

पुरुषोत्तमदास टंडन।

दो शब्द

सफल साधना सेठ अचलसिंह जी का प्रथम प्रयास है। सेठ जी को विद्वान या सुलेखक होने का दावा नहीं है। ऐसी दशा में समालोचक समुदाय सहज ही यह पूछ सकता है कि फिर पुस्तक लिखने का यह दुस्साहस किस अधिकार से? इसका उत्तर एक ही है, परन्तु वह है इतना युक्ति युक्त कि कड़ी से कड़ी कसौटी पर कसा जाने पर भी खरा उतरेगा। एक कवि का कहना है—

"भाव अनूठे चाहिये भाषा कोई होइ"

सेठ जी के भाव सुन्दर तथा उपादेय है। पुस्तक में प्रकट किये गये विचारों के लिये वे मौलिकता का दावा नहीं करते परन्तु वे निस्सङ्कोच यह कह सकते हैं कि "सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बानी।"

सत्सङ्ग और श्रेष्ठ विचारों के समुच्चय से सेठ जी को विशेष प्रेम है। अपने इन दोनो गुणों के फल स्वरूप उन्होंने अनेक विद्वानो के विचारों से साक्षात्कार प्राप्त किया है और उन्हीं सुवि-चारों को सफल साधना मे प्रकट किया है। इन विचारो में विशेष कर धार्मिक और व्यावहारिक खण्ड में प्रकट किये गये विचारों मे सेठ जी की आत्मनुभूति की पुट है। ये विचार उनके जीवन के अङ्ग बन गये हैं, वे स्वयं चिरकाल से इन्हीं विचारों के अनु-सार चल रहे हैं, और अपने नामानुसार वे कभी इस सुपथ से विचलित नहीं हुए। सेठ जी का प्रचण्ड से प्रचण्ड प्रतिपक्षी भी उनके आचरण की ओर अंगुली नहीं उठा सकता और किसी

मनुष्य के सम्बन्ध में इस बात का कहा जाना, उसकी इतनी प्रशंसा करना है जिसके लिए लाखो तरसते हैं।

विद्वानों का मत है कि उपदेश से आचरण का प्रभाव कई गुना अधिक होता है और सेठ जी का आचरण ही उनका उपदेश है। इसलिए आशा है कि देश का नवयुवक समाज इन उपदेशो के अनुसार आचरण करके अपना हित सम्पादित करेगा, सेठ जी के परिश्रम को सफल करेगा तथा उनकी आत्मा को सुखी और सन्तुष्ट कर के उन्हें अपने सत्प्रयत्न जारी रखने के लिये प्रोत्साहित करेगा।

सेठ जी के अन्य विचारो में भी सामयिकता और समयानुकूलता, प्रचुर मात्रा में पाई जायगी।

मैं आशा करता हूं कि सेठ जी सदैव समय के साथ रहने का सुप्रयत्न करते रहेंगे और इस मर्त्यलोक में स्वर्ग स्वरूप श्रेष्ठ विचार-जगत् में विचरण करते हुए तथा उन विचारो पर आचरण करते हुए अपने जीवन को सफल, सार्थक एवं समाज और स्वदेश के लिए उत्तरोत्तर अधिकाधिक उपयोगी बनाते जायंगे।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल।

मेरा निवेदन

बहुत समय से मेरा ऐसा विचार था कि गृहस्थों, नवयुवकों और विद्यार्थियो के सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार प्रकट करूं। सन् १९३० ई० में महात्मा गांधी जी द्वारा जब सत्याग्रह का युद्ध छिड़ा उस समय मैंने अपनी तुच्छ सेवाएं देश को अर्पित कर दी थीं। फलतः ता० २० सितम्बर १९३० को मैं गिरफ्तार किया गया और मुझे ६ महीने की सख्त सज़ा और पांच सौ रुपया जुर्माना किया गया। इसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। उस समय जेल में मुझे कुछ पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके आधार पर अपने अनुभव के अनुसार मैंने 'सफल साधना' नाम की एक छोटी सी पुस्तक लिखने का प्रयत्न किया। पर समझौते के समय जेल से जल्दी छूट जाने के कारण मैं अपने पूरे अनुभवों को नहीं लिख सका। इसलिये मैंने यह निश्चय किया कि भविष्य मे यदि कभी और अवकाश मिलेगा तो मैं अपने विचारों को पूर्णतया लिखने की चेष्टा करूंगा। मुश्किल से एक वर्ष भी नहीं निकल पाया था कि युद्ध के बादल फिर मंडराने लगे और महात्मा जी के इंगलैंड से आने के ६ दिन बाद ही, यानी ता० ४ जनवरी सन् १९३२ को फिर युद्ध आरम्भ होगया। इस समय भी मैंने अपनी सेवाएं देश को अर्पित कीं। फलतः ता० २ फरवरी को गिरफ़्तार किया गया और धारा १७ ए, १७ बी और चौथे आर्डीनेन्स की चौथी धारानुसार साढ़े तीन वर्ष की सख्त सजा और पांच सौ रुपये

जुर्माने का मुझे दण्ड दिया गया। चूंकि सारी सजा साथ साथ चली, इसलिए वह केवल अठारह महीने की ही रही। यह अवसर मेरे लिये एक स्वर्ण अवसर था, किन्तु मनुष्य का कर्म उससे आगे चलता है। जेल में मेरे कूल्हे में निरन्तर दर्द रहने लगा जिसके कारण मुझे चलने, फिरने, बैठने, सोने आदि मे अधिक कष्ट होने लगा। इसके अलावा मेरे पूज्य भाई साहब बीमार होगए जिसके कारण मेरा चित्त सदा चिन्ताग्रस्त रहने लगा। ता० ११ जनवरी सन् १६३३ को उनका स्वर्गवास होगया। इस बीच में जितना समय मुझे मिलता रहा उसमे अनेक पुस्तकों और ग्रन्थों का मैं अवलोकन करता रहा। इस प्रकार मुझे करीब चालीस पुस्तकों के अवलोकन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अपने अनुभव और इन पुस्तको के आधार पर मैंन कुछ लेख लिखने शुरू कर दिये। इस पुस्तक में उन्हीं लेखों का संग्रह है। गृहस्थो, मुख्यतया नवयुवको और विद्यार्थियों को एक आदर्श जीवन अर्थात् सदाचारयुक्त चरित्रवान जीवन व्यतीत करना चाहिये। एक गृहस्थ अपने जीवन को किस प्रकार सफल बना सकता है और कौन कौन सी बातें उस के जानने योग्य हैं इन विषयो के सम्बन्ध में मैंने जो पुस्तकें पढ़ीं उन्हीं के आधार पर यह लेख लिखे हैं। मैं आशा करता हूं कि मेरे बन्धुओं और बहिनों को यह लेख अवश्य उपयोगी साबित होगे। यदि मेरी आशा शतांश में भी सफल हुई तो मै अपने को भाग्यशाली समझूंगा।

—अचलसिंह

सेठ अचलसिंह

(संक्षिप्त जीवन-परिचय)

विद्या, धन, बल और यश—यह चारों दुर्लभ बातें विरले भाग्यशाली को ही एकत्र मिलती हैं। इस पुस्तक के लेखक सेठ-अचलसिंह बहुत अंश में ऐसे ही विरले भाग्यशालियों में हैं। धन आपको विरासत में मिला है। आपके पिता श्री सेठ पीतमचन्द जी आगरे के ओसवाल समाज में एक प्रतिष्ठित और श्री सम्पन्न गृहस्थ थे। उन्होने अपने बाहुबल से बहुत रुपया पैदा किया था। सेठ पीतमचन्द जी के तीन पुत्र हुये। पहली स्त्री से सेठ जसवन्त राय जी और दूसरी स्त्री से सेठ बलवन्त राय और सेठ अचल-सिंह जी। सेठ जसवन्त राय आगरे के सार्वजनिक जीवन मे बड़े प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे अपने जीवन के अंतिम २८ वर्ष तक आप आगरा म्यूनिस्पेल बोर्ड के मेम्बर रहे। पिता के स्वर्ग-वासी होजाने के पश्चात् सेठ अचलसिंह की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध आपकी ही संरक्षना मे हुआ।

बालकपन में सेठ अचलसिंह जी का झुकाव पढ़ने की ओर इतना अधिक नहीं रहा जितना व्यायाम और स्वास्थ्य की ओर। व्यायाम की ओर आपकी बहुत अधिक रुचि रही। आपने अपनी एक व्यायामशाला खोली और उसमें सम्मिलित होकर सैकड़ों नौजवानो ने अपना स्वास्थ्य सुधारा। स्वास्थ्य ही नहीं सुधारा बल्कि सेठजी के संसर्ग में उन्होंने अपना जीवन भी सुधार लिया। इस शालामे आने वाले और दूसरे प्रकार से सेठजी से संसर्ग रखने वाले सैकड़ों नवयुवकों ने सदाचार और संयम का सेठजी से वह सबक़ सीखा जो उन्हें आजन्म सुपथ पर चलाता रहेगा। व्यायाम का इतना प्रेम होने का प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि शारीरिक

शक्तिमें सेठजी का नाम सबसे पहले लिया जाने लगा। उनकी गणना आगरे के सबसे बड़े पहलवानो में होने लगी और इस दृष्टि से आगरे का बच्चा बच्चा उन्हें आदर की दृष्टि से देखने और आदर्श मानने लगा।

स्वास्थ्य की ओर इतना अधिक ध्यान देने का एक फल यह भी हुआ कि शिक्षा मे सेठजी अधिक उन्नति नहीं कर सके। जैसी सुविधाएं उन्हें प्राप्त थी उससे उनके लिए बी० ए०, एम० ए० पासकर लेना कठिन न था किन्तु ऐसा नहीं हुआ। वे मेट्रिक से आगे नही बढ़ सके। परन्तु शिक्षा का जो असली उद्देश्य है, उसे बिना परीक्षा पास किए ही सेठ जी ने प्राप्त कर लिया। शिक्षा का असली उद्देश्य हमारी समझ में मनुष्य को संस्कृत बनाना है और सेठ अचलसिंह इस दृष्टि से पूर्ण रूपसे शिक्षित हैं।

शिक्षा समाप्त करके सेठजी ने व्यापार की ओर क़दम बढ़ाया और उसमें निपुणता भी प्राप्त की, किन्तु जिस प्रकार विद्यार्थी अवस्था में आपका अधिक ध्यान व्यायाम के प्रचार मे लगा उसी प्रकार व्यापारी अवस्था में आपका अधिकतर समय सार्वजनिक कार्यों में व्यय हुआ। आपने कई वर्ष तक आगरा व्यापार समिति के मंत्रित्व का कार्य करके उसको संचालित किया। और भी कितनी ही सार्वजनिक संस्थाऐं आपकी देख रेख मे चलती रहीं। कई वर्ष तक आप आगरा म्यूनिस्पेल बोर्ड के सदस्य और उसके वायस चेयरमैन रहे। आगरे की प्रसिद्ध स्वदेशी बीमा कम्पनी लि० के खोलने में आपने बड़ा सहयोग दिया। उसको इतना उन्नत बनाने में आपका भी हाथ है। आप उसके डायरेक्टर्स बोर्ड के चेयरमैन भी एक साल तक रह चुके हैं। अब भी आप उसके डायरेक्टर हैं। व्यापार क्षेत्र में आपका बड़ा मान है। पचासों मामलों में पंच बनकर आपने लोगों के झगड़ों को निपटाया है। सभी लोग आपकी इज्जत करते हैं।

ओसवाल जाति और स्थानकवासी जैनियों में तो आप विशेष अग्र स्थान रखते है। अजमेर में ओसवाल नवयुवक सम्मेलन के आप प्रधान बनाए गए थे। ओसवाल समाज के लिए आपने काम भी बहुत किया है। आगरे का ओसवाल जैन बोर्डिंग हाउस एकमात्र आपकी सहायता और उद्योग से चल रहा है। स्थानकवासी जैन समाज में पड़ी हुई फूट को दूर करने मे भी आपने बड़ा उद्योग किया है। दिगम्बर, स्वेताम्बर और स्थानकवासी समाज को मिल कर कार्य करने के लिए आपने बड़ा परिश्रम किया है।

राष्ट्रीय आन्दोलन और कांग्रेस से आपका सम्बन्ध सन् १६२० के आन्दोलन से हुआ। तभी से आपने कांग्रेस का कार्य बड़ी लगन और उत्साह से किया। १६२०-२१ के आन्दोलन में आप जेल तो नहीं गए पर उसके संचालन में आपका हाथ बहुत रहा। १६३० के आन्दोलन में तो एक प्रकार से आप उसके मुख्य प्रवर्त्तक रहे। इस आन्दोलन मे रुपये का प्रबन्ध तो आपके हाथ में था ही, और भी सब काम आपकी देख रेख में होते थे फलत सितम्बर के अन्त में आप गिरफ्तार कर लिए गए और छः मास की कैद और ५००) जुर्माने की आपको सजा मिली। १६३२ के आन्दोलन में आप शुरू में ही गिरफ्तार कर लिए गए और बहुत लम्बी सजा मिली। इस बार जेल में आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आपके कूल्हे में एक ऐसा दर्द शुरू होगया जो अब तक बन्द नहीं होता और जिसके कारण आपका उठना-बैठना तक कष्टकारक होगया है। इस बार की जेल में दूसरा स्थायी दुःख आपको यह होगया कि आपके बड़े भाई सेठ बलवन्तराय जी की मृत्यु होगई। बलवन्तराय जी और अचलसिंहजी में अद्वितीय भ्रातृ-प्रेम था। भाई की मृत्यु का जेल में आपके स्वास्थ्य और मन पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा। आर्थिक दृष्टि से भी आपको बहुत हानि हुई। जेल से लौट कर आप

व्यापार-धन्धों से पूरी तरह से मनको हटा लिया है। अब आप घर पर रह कर सार्वजनिक कार्य ही अधिकतर करते रहते हैं।

१९२४ की बाढ़ में आपने विपद ग्रस्तो की बहुत सेवा की थी। हाल ही मे बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए पांच हजार रुपया आगरे से इकट्ठा करके भिजवाया था। राष्ट्रीय कार्य के लिए जब जब रुपया इकट्ठा किया गया है तब तब उसके एकत्र करने में आपका प्रमुख हाथ रहा है। आपने अपने पास से भी हजारों रुपया ऐसे कार्यो में व्यय किया है।

ग्रामीण जनता के लिए आपने एक बड़ी रक़म देने का संकल्प किया था। उसके लिए अचल-ग्राम सेवा-संघ की स्थापना हुई थी। इस संघ के द्वारा ग्रामीण जनता में औषधि वितरण, ग़रीबों को कपड़े और कम्बल बांटने तथा पुस्तकालय व पाठशाला खोलने का काम हो रहा है। अभी यह काम आगरा ज़िले की फिरोजाबाद और ऐतमादपुर तहसीलों मे ही शुरू किया गया है। सेठजी इस कार्य में अब कुछ परिवर्त्तन करने की बात सोच रहे हैं।

सेठ जी हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के बड़े हिमायती हैं। १९३१ में जो हिन्दू मुस्लिम दंगा आगरे में होगया था उसे आरंभ में ही रोकने के लिए सैंकड़ों आदमियों के मना करने पर भी आप अकेले ही मुसल्मानों की बस्ती मे रवाना होगए थे। आपके समझाने से लोग रुक भी गए थे पर ज़रा आगे बढ़ने पर कुछ गुण्डों ने आप पर भी आक्रमण कर दिया जिससे आपके सिर में गहरी चोट आई थी।

सेठ जी स्वभाव से बड़े सीधे और सरल हैं। छल, कपट और चालबाज़ी आपके पास होकर भी नही निकली है। आप निर्भय और निस्पृह भी एक ही हैं। अनुशासन मे चलना तो मानो आपने जन्म से ही सीखा है। सन् १९२२ में आपको कौंसिल के लिए खड़ा किया गया। काफी प्रयत्न कर चुकने, खर्च हो जाने

और सफलता की पूरी आशा होने पर भी जब आपके प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवार पं० गोविन्दसहाय शर्मा ने स्वराज्य पार्टी का सदस्य होना स्वीकार कर लिया और पं० मोतीलाल नेहरू ने आपकी सदस्यता को मान लिया तो सेठ जी अपने आप उम्मेदवारी से हट गए! इतना ही नहीं आपने पूरी कोशिश करके शर्मा जी को सफल बनाया। शर्मा जी की मृत्यु के बाद आप कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए और वहां आपने स्वराज्य पार्टी का पूरा साथ दिया। आपका रहन सहन बहुत सादा है। मितव्यता के आप बड़े पक्षपाती हैं, एक पैसा भी व्यर्थ व्यय करना आपके लिए संभव नहीं। आपका चरित्र तो बड़े बड़ो के लिए आदर्श है।

आपका जन्म संवत् १६५२ में हुआ था। अब आपकी आयु ३६ साल की है। आपका विवाह १६ वर्षकी आयु में ओसवाल समाज के प्रतिष्ठित ला० मिट्ठनलाल जी की सुपुत्री श्रीमती भगवती-देवी के साथ हुआ। श्रीमती भगवतीदेवी आदर्श पति की आदर्श गृहिणी हैं। स्त्रियों मे जिन सद्गुणों की आवश्यकता है वे तो आप में हैं ही साथ ही निर्भयता, तेजस्विता और राष्ट्र प्रेम भी आप में खूब है। १६३० और १६३२ के राष्ट्रीय आन्दोलनों मे आपने भी बड़ी संलग्नता से देश का काम किया था। आगरे मे महिला समाज ने जो काम किया उसमें आपका विशेष हाथ था। सचमुच आप जैसी धर्मपत्नी का पाना सेठ जी के सौभाग्य-शाली होने का एक और प्रमाण है। इस दम्पत्ति के योग से अभी कोई सन्तान नहीं है। कई बच्चे हुए और जाते रहे हैं। परन्तु उदार-चरित सेठ जी के लिए वसुधैव कुटुम्ब है। आप जैसे नर-रत्न और जन-सेवक संसार में प्रचुर मात्रा में पैदा हों और यह युगल दम्पत्ति भविष्य में और भी अधिक जन-सेवा कर सकें-इस सद्भावना के साथ यह संक्षिप्त परिचय समाप्त किया जाता है।

—महेन्द्र।

प्रथम खण्ड

आर्थिक

है भूमि बन्ध्या हो रही, वृष जाति दिन दिन घट रही,
घी-दूध दुर्लभ हो रहा, बल वीर्य की जड़ कट रही।
गोवंश के उपकार की सब ओर आज पुकार है,
तो भी यहां उसका निरन्तर हो रहा संहार है।

—मैथिलीशरण गुप्त

× × × ×

India, the mine of wealth ! India in poverty ! Midas starving amid heaps of gold does not afford a greater Paradox: Yet here, we have India, Midas like, starving in the midst of untold wealth ! —*Molesworth.*

× × × ×

प्रसिद्ध मोलसवर्थ का कथन है-"भारत भूमि धन की खान है। इसमें नाना प्रकार के खेती, खनिज और उद्योग के लिये प्राकृतिक सामान हैं। उत्तम कोयला है, उम्दा मिट्टी का तेल है, लोहे और लकड़ी की उत्तमता से इंग्लैण्ड वालों के मुँह में पानी आ जाता है, सोना, चांदी, तांबा, लोहा तथा अन्य अनेक रत्नों की भी कमी नहीं, तिस पर भी भारत भूखों मरे!"

हिन्दुस्तान की आर्थिक अवस्था का दिग्दर्शन

जैसे सब आदमी एक से नहीं होते वैसे ही सब देश भी एक से नहीं होते। किसी की आर्थिक अवस्था अच्छी होती है, किसी की बुरी। किसी में किसी चीज की अधिकता होती है, किसी में किसी चीज की कमी। सम्पत्ति की उत्पत्ति के जो तीन साधन हैं, भूमि, पूंजी और मजदूर-वे सब कहीं एक से नहीं पाये जाते। इंगलैण्ड में पूँजी खूब है, मजदूरों की भी कमी नहीं है पर जमीन बहुत कम है। अमेरिका मे पूँजी भी है, जमीन भी है, पर मजदूरी बड़ी महँगी है। हिन्दुस्तान को देखिये, यहाँ जमीन और मजदूर दोनों की कमी नहीं है, कमी है पूँजी की। इसी तरह हर एक देश की स्थिति प्रथक् प्रथक् होती है। इंगलैण्ड के पास भूमि कम है पर पूँजी बहुत है और उद्योग धन्धे से लोगों को बहुत प्रेम है। इस कारण भूमि की कमी उसे बहुत कम हानि पहुँचाती है। उसके कम होने पर भी इंगलैण्ड में अनन्त सम्पत्ति भरी हुई है। अमेरिका का भी यही हाल है। उद्योग-प्रियता और पूँजी के बल से मजदूरी महँगी होने पर भी वहाँ लक्ष्मी का अखण्ड वास है। इससे साबित है कि सम्पत्ति की अधिक उत्पत्ति के लिये पूँजी और उद्योग दो बातें प्रधान हैं। जिस देश मे पूँजी है उसके द्वारा लोग उद्योग धन्धा करना जानते हैं और वहाँ और साधनों की कमी होने पर भी सम्पत्ति का ह्रास नहीं होता बल्कि दिन प्रतिदिन वृद्धि ही होती है।

भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था हीन है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि जिन बातों से देश की आर्थिक दशा सुधरती है उन सबका करना देश वासियों के हाथ में नहीं है। उनमें से बहुतेरी बातों को विदेशी सरकार ने

अपने हाथ में ले रक्खा है। भारतवर्ष का शासन इंगलैण्ड के हित की दृष्टि से होता है। कोई बात जिसमें उस देश की किसी प्रकार भी हित-हानि होती हो—भारत-सरकार उसको न करेगी फिर चाहे वह भारतवर्ष के कितने ही लाभ की क्यों न हो।

इंगलिस्तान में जमीदारों को ज़मीन का लगान नहीं देना पड़ता। यह भारतवर्ष ही में देना पड़ता है और थोड़ा नहीं, बहुत देना पड़ता है। फिर वह बीस बीस तीस तीस वर्ष बाद बढ़ भी जाता है। हाँ! बंगाल मे इस्तमरारी बन्दोबस्त है। वहाँ न बेदख़ली का डर है और न लगान मे इज़ाफ़े का। सरकार ज़मीन की जो मालगुज़ारी लेती है वह मजदूरी आदि देने के बाद बची हुई पैदावार का आधा होती है अर्थात् ५० फीसदी मालगुज़ारी सरकार को देनी पड़ती है। यह शरह मामूली फ़स्ल के हिसाब से बाँधी गई है पर यदि फ़स्ल ख़राब हो जाती है तो प्रजा को प्रायः उतना ही लगान देना पड़ता है जितना कि अच्छी फस्ल होने पर देना पड़ता है। फिर यह ५० फीसदी की शरह सब कहीं एकसी प्रचलित नहीं है। कहीं कही ६० फ़ीसदी तक लगान देना पड़ता है। पटवारी, चौकीदार, स्कूल, सफाख़ाने आदि का कर लगाकर वह कहीं कहीं ६५ फ़ीसदी से भी अधिक हो जाता है। इसका फल यह होता है कि कास्तकारों को बहुत ही कम और किसी किसी को तो कुछ भी नहीं बचता। यहाँ तक कि उनकी ज़मीनें नीलाम होजाती हैं। यहाँ के वाणिज्य व्यवसाय की भी बुरी दशा है और कृषि की भी। यही दो मदें देश की सम्पत्ति बढ़ाने वाली हैं सो दोनों ही बुरी स्थिति में हैं। संसार का कोई देश, फिर वह चाहे कैसा ही सम्पत्तिवान् क्यों न हो, इस दशा में कभी उन्नति नहं हो सकता। साठ साठ फ़ीसदी के हिसाब से कृषि की पैदावार को कास्तकारों से लेने पर कोई देश बरबाद होने से बच नहीं सकता

इस देश की आर्थिक अवनति का एक कारण यह भी है कि विदेशी राज्य होने के कारण विदेशी अधिकारी और विदेशी फ़ौज रखने तथा विदेशी सामान खरीदने में देश की सम्पत्ति का बड़ा अंश बाहर चला जाता है और भारत उससे हमेशा के लिए हाथ धो बैठता है। हिन्दुस्तान के ख़र्च खाते में इंगलैण्ड में हर वर्ष क़रीब २६ करोड़ रुपया लिखा जाता है। यह सब हिन्दुस्तान को देना पड़ता है।

प्रजा से गवर्नमेण्ट जो मालगुज़ारी वसूल करती है उसका एक चतुर्थांश विलायत जाता है। जो अंग्रेज इस देश में सरकारी नौकरी करते हैं, वे इस देश से जो द्रव्य अपनी तनख़ाह से बचा कर भेजते हैं, यदि वह जोड़ा जाय तो इस देश से विलायत जाने वाली सम्पत्ति का परिमाण और भी अधिक होजाय। हर वर्ष इसी तरह इस देश की सम्पत्ति की धारा विलायत को बहती है और इस देश की दरिद्रता बढ़ाने का कारण होती है। इस सम्पत्ति का बदला हिन्दुस्तान को नहीं मिलता। इस दशा में यदि भारतवर्ष की भूमि स्वर्णमय हो जाय तो भी यह देश कंगाल हुये बिना न रहेगा। विलायत में हर आदमी की सालाना आमदनी का औसत कोई ६००) है और हिन्दुस्तान में हर आदमी का सिर्फ ४८) है। इस पर विलायत-वाले होम चार्जेज के नाम से यहां के फी आदमी से औसतन् ७॥) वसूल करके अपने देश को ले जाते हैं। फिर भला क्यों न यह देश दिनों दिन दरिद्रता के फाँस में फंसता जाय?

यहां की साम्पत्तिक अवस्था अच्छी न होने का सब से बड़ा सबूत यह है कि यहां की सरकार को अक्सर करोड़ों रुपया क़र्ज़ लेना पड़ता है। इस समय क़रीब एक हज़ार करोड़ रुपये का क़र्ज़ा हिन्दुस्तान के सिर पर है। उस पर जो सूद सरकार को

देना पड़ता है उससे यहां का पहिले ही से बढ़ा हुआ खर्च और भी चढ़ जाता है।

यह तो रही कृषि की बात। उद्योग व्यवसाय का भी यही हाल है। हमारी शिक्षा हम में मौलिकता नहीं उत्पन्न करती। हम किसी मिल वा फैक्टरी के सम्बन्ध में कोई नवीन योजना नही कर सकते। यदि कोई योजना भी की जावे तो उसको सफल बनाने के पर्याप्त साधन नहीं होते। मजदूरी और कच्चे माल की बहुतायत होते हुये भी पूंजी बिना उसका सदुपयोग नहीं होता। जो कुछ पूंजी है भी उसका अधिकांश जेवरों में अनुत्पादक रूप से पड़ा रहता है और कुछ प्रोमेसरी नोट्स में लगा रहता है। उसमें सूद तो आता है किन्तु उससे व्यवसाय की वृद्धि नहीं होती। इसके अलावा पूंजी वाले ऐसे तंग दिल आदमी होते हैं, कि व्यापार, व्यवसाय में रुपया लगाने का उन्हे साहस नहीं होता। वे डरते हैं कि हमारा रुपया डूब न जाय। मिल कर काम करने (सामूहिक समुत्थान) का तो यहां नाम ही न लीजिये। कम्पनियां खड़ी करके बड़े बड़े व्यवसाय करना यहां वालों को मालूम ही नहीं। यहाँ अस्सी नव्वे फीसदी की जीविका खेती से चलती है सो खेती की यह दशा है कि जमीन को उर्वरा बनाने, उसकी उत्पादन शक्ति बढ़ाने की उत्तम तरकीबें लोगों को न मालूम होने से उसकी पैदावार कम हो जाती है फिर किसी वर्ष पानी बरसता है किसी वर्ष नहीं बरसता। जिस वर्ष जहां पानी नही बरसता है वहां कुछ नहीं पैदा होता यानी अकाल पड़ जाता है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आदि में जो बड़े बड़े कारखाने हैं वे अभी खुले हैं। बड़े बड़े व्यापारी भी बहुत कम हैं। जितने उद्योग धन्धे हैं सब थोड़ी पूंजी से चलते हैं। यहां के लोग सञ्चय करना तो जानते ही नहीं हैं। जिनके पास थोड़

बहुत धन है वे इस क़दर फिजूल ख़र्च करते हैं कि धन कभी बढ़ने नहीं पाता। अतएव यदि भारत की आर्थिक अवस्था हीन हो, यदि उसके अधिकांश निवासियों को दोनो वक्त भर पेट खाने को न मिले तो कौन आश्चर्य की बात है। और अगर एक साल पानी न बरसने पर दरिद्रता के कारण हज़ारों आदमी भूखो मर जांय तो कोई अश्चर्य की बात नहीं।

यहां के व्यापार को देखिये। विलायती चीज़ों से बाज़ार भरे पड़े हैं। शुरू २ में इंगलिस्तान की सरकार ने यहां की कपड़े की रफ्तनी पर विलायत मे कड़ा महसूल लगा कर विलकुल ही रोक दिया। यहां का व्यापार यहां का कला कौशल मारा गया। अब जब उसके पुनरुज्जीवन की ओर लोगों का ध्यान गया है तब यथेष्ट कर लगा कर विलायती वस्तुओं की आमदनी नहीं रोकी जाती। अगर किसी विलायती चीज पर महसूल है भी तो इतना कम कि न होने के बराबर है। एक समय था कि भारतीय बने हुए माल से सारे यूरोप के बाज़ार भरे रहते थे पर अब यह सब स्वप्न हो गया है। अब तो सिर्फ कच्चा माल विशेष करके प्रजा के पेट पालने का अनाज देशान्तर को जाता है और अकाल पड़ने पर यहां वालों को दाने दाने के लिये मुहताज होना पड़ता है। यदि भारत मे बाहर से आने वाले माल पर कड़ा कर लगा दिया जाय या उसकी आमदनी कम की जाय जो यहां की आर्थिक अवस्था बहुत जल्द उन्नत हो सकती है। ख़ुद इंगलैण्ड ने शुरू में यह बात की थी। हिन्दुस्तानी माल पर उसने कड़े से कड़े कर लगा कर विलायत में उसकी आमदनी रोक दी थी और विलायती माल विना कर या बहुत थोड़ा कर लगा कर हिन्दुस्तान में भर दिया था। फल यह हुआ कि यहां का प्रायः सारा व्यापार और सारे उद्योग धंधे मारे गये।

आज अंग्रेजों को भारत पर राज्य करते हुये क़रीब डेढ़ सौ वर्ष होगये। इनका दावा है कि हम भारत के हितैषी हैं और हमारा उद्देश्य भारत को अपने आप अपना शासन करने के योग्य बना देने का है तथा हम इसके वाणिज्य व्यवसाय को कामयाब बनाने में पूरा पूरा उद्योग कर रहे हैं पर वास्तव में देखा जाय तो भारत को शासनाधिकार देने की बात केवल ढोंग मात्र है और प्रति दिन यहाँ के व्यवसाय की अवस्था गिरती जाती है। जो देश स्वतन्त्र होते हैं वे अपनी उन्नति के साधन अर्थात् उद्योग व व्यवसाय बात की बात में ठीक कर लेते हैं, पर जो गुलाम होते हैं वे कुछ नहीं कर सकते। आज रूस को आज़ाद हुये मुश्किल से १५ वर्ष हुये पर उसने ऐसी आश्चर्यजनक उन्नति की है कि अंग्रेज़ भारत मे डेढ़सौ वर्ष में उसका दशांश भी नहीं कर सके हैं।

इसलिये जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जायगा तब तक पूरी उन्नति नहीं कर सकता लेकिन परतन्त्र होते हुये भी यहाँ के निवासियों को जिस क़दर तरक्की वे स्वयं कर सकें करनी चाहिये।

हिन्दुस्तान की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये जिन बातों की जरूरत है उनमें से कुछ निम्न लिखित हैं:—

१—नये नये उपायों से ज़मीन की उत्पादक शक्ति को बढ़ाना।

२—आबादी न होने के कारण अच्छी जमीन जो परती पड़ी है उसे आबाद करना।

३—वैज्ञानिक रीतियों से कला-कौशल और दस्तकारी की उन्नत्ति करना।

४—कच्चा माल देशान्तर को न भेजकर यहीं सब तरह का माल तैयार करना।

५—नई नई कलें जारी करके उपयोगी कारखाने खोलना।

६—पूँजी बढ़ाना और सामूहिक समुत्थान के नियमानुसार व्यवसाय करना।

———

भारतवर्ष का पशुधन।

प्रत्येक देश मे उसकी जलवायु के अनुसार कोई न कोई एक मुख्य धन्धा हुआ करता है जिसके आधार पर उसके बहु संख्यक मनुष्य अपनी जीविका चलाया करते हैं। जिस प्रकार इंगलैण्ड लोहे और कोयले के धन्धे से, न्यूजीलैण्ड अपनी भेड़ों से, जावा वाले चीनी से, फ्रांस वाले अंगूर से उसी प्रकार भारत अपने पशुओं से अपनी जीविका चलाता है। यही चीजें इन देशों का मुख्य धन माना गया है।

जो देश स्वतन्त्र हैं वे हर प्रकार से अपने धन की तरक्की करने का प्रयत्न किया करते हैं, जिससे उसके वाशिंदो और उनकी आने वाली सन्तानों की जीविका सुगमता से चलती रहे। पर जो देश परतन्त्र होते हैं वे अपने धन की उन्नति को नहीं क़ायम रख सकते। उसका परिणाम यह होता है कि वे और उनकी सन्तानों को रोटी की मुसीबत व मुश्किलात का सामना करना पड़ता है।

मैं आप महानुभावों का ध्यान भारत और उसके प्राचीन धन की ओर ले जाना चाहता हूँ। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि भारत का धन पशुधन ही माना गया है। प्राचीन समय में मनुष्यों की अमीरी व ग़रीबी का अन्दाजा उनके पशुधन से ही लगाया जाता था। अगर आप प्राचीन इतिहास को देखें तो आपको पता चलेगा कि एक सेठ साहूकार के दस दस बीस बीस तीस तीस व चालीस चालीस हजार गायों के झुण्ड होते थे और इसके अलावा पांच पांच सौ, हजार हजार, दो दो हजार तक जुआरे व गाड़ियां

रहा करती थीं जिनके द्वारा उनकी खेती का धन्धा व माल देश देशान्तरो से लाने व ले जाने का कार्य चला करता था। हर ग्राम मे सैकड़ों नहीं, बल्कि हजारों पशु हुआ करते थे। यहां तक कि नगरो व शहरो में हर गृहस्थ के पास कम से कम दो चार पशु अवश्य हुआ करते थे। यह व्यवस्था तो अकबर और औरंगजेब के समय तक चली आती थी कि क़रीब क़रीब हर गृहस्थ के यहां कम से कम एक गौ अवश्य हुआ करती थी।

यही कारण था कि उन दिनो मनों के नाज, सेरों के घी, पसेरियों के तैल, गुड़ आदि चीजें बिका करती थीं। दूध बिकने की तो कोई जरूरत ही नहीं पड़ती थी क्योकि प्रत्येक गृहस्थ के कोई न कोई पशु अवश्य हुआ करता था और अगर किसी को जरूरत पड़ भी जाती थी तो वह आपस में मांग लिया करता था जैसा कि प्रायः आज कल पानी पीने के वास्ते मांग लिया करते हैं। इसका कारण केवल यही था कि उस समय लगान बहुत कम था और पशुओं की काफ़ी संख्या थी जिनके गोबर आदि का काफी तादाद में खाद बनता था और पशुओं की काफ़ी संख्या होने के कारण खेत आसानी से कमा लिये जाते थे। इसके अलावा हर गांव, क़स्बे, नगर व शहर के पीछे कितनी ही चरागाहें हुआ करती थीं जहां सारे गांव, नगर व क़स्बे के पशु चरा करते थे। यही कारण था कि सेरों के घी और मनों के नाज बिका करते थे। यहां तक कि पथिकों या राहगीरों को पानी के बजाय दूध पिलाया जाता था। बाज बाज लोग तो दूध की प्याऊ लगवा दिया करते थे। आज कल तो मनुष्यों को दूध के दर्शन तक नहीं होते हैं। यहां तक कि मरीजों तक को दूध नहीं पैदा होता जिसके कारण हर वर्ष सैकड़ो, हजारों नहीं, बल्कि लाखों बच्चे काल के गाल में पहुँच जाया करते हैं।

अब मैं आप महानुभावों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि किन किन कारणों से यह बिकट समस्यायें उपस्थित होगईं।

१—यह तो आप जानते हैं कि भारत का धन पशु ही रहा है। विदेशो को चमड़े, हड्डी, खून, चर्बी इत्यादि की जरूरत पड़ती ही है तो वह कहां से पूरी हो। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहां जी चाहे जितना चमड़ा, चर्बी, हड्डी, मांस आदि किफायत से मिल सकता है। उन्होंने यहां कुछ लोगों से इसकी मांग की तो लोभी और स्वार्थी पुरुषों ने, और जो पशुओ का मारना पाप या हानिकारक नहीं समझते थे, उन्होने कसाइयों द्वारा पशु कटवा कर चर्बी, चमड़ा, हड्डी, खून, मांस देना शुरू कर दिया। क्योंकि भारत मे पशुओं की बहुतायत थी इस कारण पशु बहुत सस्ते मिलते थे और इस प्रकार काटने वाले क़ारख़ाने-दारों ने यहां आकर कम्पनियां खोल दी जिनका सिर्फ यही काम था कि वे यहां से कच्चा चमड़ा, मांस, चर्बी इत्यादि खरीद खरीद कर विदेशों को रवाना करें। इस प्रकार यह पेशा दिनों दिन बढ़ता गया, यहां तक कि हर प्रान्त में दो दो चार चार कमेले (Slaughter House) खुल गये, जहां प्रति वर्ष सैकड़ों, हजारों नहीं, बल्कि लाखों पशु काटे जाते हैं और यह एक बड़ा मोटा रोजगार बन गया है। यहां के लोग इस क़दर गिर गये हैं कि बहुत से हिन्दू, बहुत से ब्राह्मण तक इन कारख़ाने दारो की ओर से पशु खरीदने लगे और यहां के धनी इस व्यवसाय मे रुपया लगाने लगे। इसका परिणाम यह निकला कि आजकल इस क़दर पशुओं का अभाव होगया है कि जो गाय पांच या दस रुपये में मिलती थी वह आज चालीस या पचास रुपये में भी नहीं मिलती है और जो जुआरा पचास या पचहत्तर रुपये में मिलता

था वह आज दोसौ तक में नसीब नहीं होता है। जिस दूध का बेचा जाना महापाप समझा जाता था वह आज तीन चार आने सेर तक बिकता है। इसका सीधा सादा मतलब यही है कि अब पशुओं की संख्या इस क़दर कम होगई है कि क़रीब क़रीब बिल्कुल अभाव सा होगया है। जिन गांवों में सैकड़ों नहीं, हज़ारों मवेशी रहा करते थे वहां आज मुश्किल से दस बीस पशु दिखाई देते हैं।

२—भारत में पशुओं के कम होने का एक कारण यह भी है कि विदेशी लोग माल ढोने के वास्ते इंजिन व मोटर तैय्यार करते हैं। सड़क छिड़कने के वास्ते, मैला ढोने के वास्ते, सवारी के वास्ते, खेत जोतने के वास्ते ट्रैक्टर, हल इत्यादि चीजें तैय्यार करते हैं लेकिन भारतवर्ष में क़रीब क़रीब सारे काम बैलों द्वारा किये जाते हैं। भारतवर्ष की तो ताक़त सिर्फ पशु ही है और वे बहुत सस्ते मिलते भी हैं। इनका अभाव होने से और उनके बाजार के तेज़ होने के कारण यहाँ विदेशियों के इंजिन, मोटर, ट्रैक्टर आदि सामान के वास्ते अच्छा बाजार (Market) बन गया है और काफ़ी तादाद में उनकी खपत भी बढ़ गई है। इस प्रकार विदेशों का स्वार्थ इसी में है कि भारत के पशु धन का ह्रास हो और चूंकि यहाँ की सरकार भी विदेशी है इसलिये वह भी इस स्वार्थ की पूर्ति में बाधा नहीं पहुँचाना चाहती। जब यहाँ रेल नहीं थी उस समय लाखों बैल गाड़ियां माल ढोने का काम किया करती थीं, घर घर रथ और बहेलियां रहा करती थीं। इस प्रकार हज़ारों, लाखों नहीं, करोड़ों पशुओं और आदमियों की रक्षा हुआ करती थी। अगर कोई यह कहे कि मोटर द्वारा या रेल द्वारा किफ़ायत होती है तो यह बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि बैल गाड़ियों का सारा रुपया अपने देश में यानी हिन्दुस्तान में ही रहता है जब कि

मोटरों, इंजिनों और ट्रैक्टरों का रुपया विदेशों में चला जाता है। यही नहीं कि रुपया केवल एक बार जाकर बन्द हो जाय बल्कि जब तक मोटर, ट्रैक्टर, इञ्जिन चला करते हैं तब तक उनके वास्ते पेट्रोल और पुर्जे वग़ैरः आया करते हैं।

३—जहाँ भारत में एक लाख के क़रीब विदेशी फ़ौज रहती है, उसे नित्य मांस खाने को दिया जाता है। उनके वास्ते हज़ारों गौएं प्रति दिन बध की जाती हैं।

४—हम प्रायः देखा करते हैं कि यहाँ के अच्छी अच्छी नस्ल के मवेशी जैसे हरयाने की भैंसें, मान्टगोमरी की गायें विदेशो को भेजी जाती हैं।

५—कलकत्ते, बम्बई आदि शहरो के दूध बेचने वाले ग्वाले बड़ी उम्दा नस्ल की गायें, भैंसें पञ्जाब, हरियाने, कोसी, छातई आदि स्थानों से मंगाते हैं और चार छः महीने दूध लेकर क़साइयों के हाथ बेच डालते हैं। वहाँ उनका ख़ातमा हो जाता है। इस प्रकार हज़ारों नहीं, लाखों पशु प्रतिवर्ष छुरी के घाट उतारे जाते हैं।

६—इसके अतिरिक्त प्रत्येक शहर में मांस खाने वालों की संख्यानुसार कई कबेले हुआ करते हैं, जहाँ प्रतिदिन छोटे पशु यानी भेड़, बकरी के अलावा गाय, बैल, भैंस इत्यादि भी मांस के लिये मारे जाते हैं।

७—ईद के अवसर पर हिन्दू मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ाने की ग़रज़ से स्वार्थी लोग हज़ारों नहीं, लाखों गायों की कुर्बानी करा दिया करते हैं।

८—गांवों और शहरों में जो चरागाहें थीं उनकी सारी ज़मीन आज कल काश्त मे ले ली गई है और पशुओं के चरने के

वास्ते कोई प्रबन्ध नहीं है। अच्छे दिनों में ही चारे का अभाव रहता है फिर जब अकाल पड़ता है तब की क्या पूछना है।

६—अब तक हिन्दुओं में मूर्खता के कारण ऐसी रीति चली आती है कि सैकड़ो नहीं, हजारो पशु देवी दुर्गा, जखैय्या के नाम पर प्रति वर्ष बलिदान किये जाते हैं अर्थात् काटे जाते हैं।

समस्या इतनी गम्भीर होती जाती है कि अब उसे हल करना कठिन हो रहा है। सिवाय इसके कि या तो पशु अपने तन को त्याग कर मर जाय या कसाइयों के हाथ बिके। इस प्रकार लाखों पशु कभी किसी प्रान्त में, कभी किसी प्रान्त मे, छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं।

अब मैं इस ओर अपने देशवासियों का ध्यान दिलाना चाहता हूं कि हम अपने धन की रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं।

सबसे मुख्य बात तो यह है कि अगर हम अपने को हिन्दुस्तानी समझते हैं और यह जानते हैं कि हम यहाँ ही पैदा हुये हैं और यहाँ ही मरेंगे, देश के सुख मे हमारा सुख है, देश के दुःख में हमारा दुःख है तो हमारा यह परम पावन कर्तव्य है कि हम अपने पशु धन की तन, मन और धन से रक्षा करें। अब प्रश्न यह उठता है कि वह उपाय कौन सा है जिससे हम अपने पशु धन की पूर्ण रक्षा कर सकते हैं। जहाँ तक मैंने सोचा विचारा है मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूं कि हम अपने धन की पूर्ण रक्षा उसी अवस्था में कर सकते हैं जब हम पूर्ण स्वराज्य हासिल कर लें। वैसे तो बहुत से तरीक़े हैं पर वे वैसे ही हैं कि जैसे पेड़ की जड़ को न सींच कर उसकी पत्तियों को सींचना। इसलिये अगर हम अपना और अपनी आने वाली सन्तान का हित चाहते हैं तो हमको अहिंसात्मक उपायों से असहयोग या

सत्याग्रह करके स्वराज्य प्राप्त करना चाहिये। उसी अवस्था में हम अपने पशु धन को जो दिनों दिनों बड़ी तेजी के साथ घट रहा है रोक सकेंगे और उसकी वृद्धि कर सकेंगे। संसार में सिर्फ भारतवर्ष ही एक ऐसा गुलाम देश है कि जिसमें व्यापार अर्थात् चमड़े, मांस, चर्वी, हड्डी के ख्याल से पशु काटे जाते हैं। कोई अभागा ऐसा देश नहीं है जहाँ कि पशु इस प्रकार बध किये जाते हैं।

परन्तु जब तक देश स्वतन्त्र न हो तब तक हमें क्या करना चाहिये? हम चाहें तो फ़ैशन और शौक के फेर में न पड़कर बहुत से पशुओं को कटवाने से रोक सकते हैं। यह पढ़कर आप महानुभाव बहुत चौकेंगे कि हम स्वयं पशु कटवाने के कारण कैसे बन रहे हैं।

प्रिय बन्धुओ! कुछ वर्ष पूर्व हम हिन्दू मात्र में यह ख्याल था कि कहीं चमड़ा, हड्डी आदि से स्पर्श न हो जाय और कहीं स्पर्श हो जाता था तो मिट्टी आदि से रगड़ रगड़ कर हाथ धोये जाते थे। जब स्पर्श करना इतना घृणित समझा जाता था तो चमड़े, हड्डी, चर्बी इत्यादि के इस्तैमाल की तो बात ही नहीं उठती थी।

विदेशियों अर्थात् यूरोपियनों के आने से पहले यहां भारत में चमड़े, मांस और चर्बी आदि की ज़रूरत के वास्ते पशु नहीं मारे जाते थे क्योंकि उस समय चमड़े, हड्डी, चर्बी, खून इत्यादि को इस्तैमाल में लाने को बुरा और असभ्यतापूर्ण और घोर पाप समझा जाता था। पर हम भारतवासियो ने ज्यों ज्यों चमड़े, चर्बी, हड्डी आदि की वस्तुओं का इस्तैमाल करना शुरू कर दिया त्यों त्यों विदेशियों को कच्चे माल की आवश्यकता पड़ने

लगी और वे भारत से कच्चे माल को ले जाकर वहाँ से सुन्दर चमड़े व हड्डी की चीजें खून से लाल रंग और चर्बी के कलफ़ से अच्छे अच्छे कपड़े व सामान बनाकर भेजने लगे। आप स्वयं इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि हम भारतवासियों ने फैशन और बाहरी आडम्बरों मे पड़कर किस तरह से चमड़े, हड्डी, चर्बी और खून आदि की वस्तुओं को अपनाना शुरू कर दिया। यह तो आपको ऊपर बताया जा चुका है कि विदेशियों के आने के पहले चमड़े की कोई वस्तु इस्तैमाल में नहीं लाई जाती थी। लोग बहुत कम जूते पहनते थे सो भी मरे हुये पशुओं की खाल से बनते थे। ज्यादातर लोग काठ की खड़ाऊँ और चट्टी का इस्तैमाल करते थे। विदेशियों से आने से पेश्तर ज्यादातर जूतों, चरसों या कोई चीज़ मढ़ने के वास्ते ही चमड़े की आवश्यकता पड़ा करती थी और वह मरे हुये पशुओं के चमड़े से पूरी हो जाया करती थी क्योकि उस समय में पशुओं की तादाद बहुत बड़ी थी। पर अब तो समय ने ऐसा पलटा खाया है कि प्रत्येक भारतवासी चमड़े का जूता पहनता है और फैशनेबिल अंग्रेज़ी पढ़े लिखे बड़े आदमी तो सिर्फ़ जूतों की एक दो जोड़े ही नहीं बल्कि दस दस पांच पांच जोड़ियाँ रखते हैं। यही नहीं, अनकरीब इस्तैमाल की सभी चीजें चमड़े व हड्डी की होना जरूरी समझते हैं। जैसे बिस्तर बन्द, पेटी, घड़ी का तशमा, सूटकेश, बक्स, बटन, घोड़े का साज, मोटर या गाड़ी पोशिस, क्येत, जीन, चाबुक, टोप, टोपियों के अन्दर चमड़े का अस्तर, हर प्रकार के तश्में इत्यादि जो चीजें देखो वह चमड़े की ही नज़र आती हैं। इस प्रकार अगर हिसाब लगाया जाय तो पता चलेगा कि एक एक आदमी के इस्तैमाल में कई कई पशुओं का चमड़ा लगता है।

यह तो आप महानुभाव जानते ही होंगे कि जितनी मुलायम और उमदा उमदा बारनिशो खालें होती हैं वह छोटे छोटे बछड़े या बछिया के चमड़े से ही तैयार की जाती हैं। जिस क़दर विदेशी बढ़िया, मुलायम और फैशनेबिल ऊनी व सूती कपड़ा आता है उसमें काफ़ी चर्बी का लेप दिया जाता है, वरना इतना दिखावटी व महीन नहीं बन सकता। तमाम मैशीनो मे भी चर्बी का व्यवहार होता है। अन्य अनेक मिलो की चीज़े भी चमड़े की बनती हैं। बहुत से साबुन और बहुत सी दवायें और अन्य चीज़ें चर्बी से तैयार की जाती है।

हड्डी के दस्ते लकड़ी, छुरी, कटारी आदि मे लगती हैं। हड्डी से ही बुरुश की डण्डी, बटन, खिलौने आदि वस्तुये तैयार की जाती हैं। इसके अलावा करोड़ों मन हड्डी यहां से पिस पिस कर खाद के वास्ते या चीनी का साफ करने के वास्ते हर वर्ष विदेशो को जाया करती है। खून का रंग बनता है और दूसरे कई कामो मे आता है।

वर्तमान समय में दुर्भाग्यवश चमड़े, चर्बी आदि का इस्तेमाल इस कदर बढ़ गया है कि भारतवर्ष में भी एक नहीं, अनेक चमड़े बनाने के कारख़ाने खुल गये हैं।

ऊपर की बातों के अलावा पशुधन के ह्रास का एक मुख्य कारण और भी है, जिसकी वजह से हमारा पशुधन दिनों दिन अधोगति का प्राप्त हो रहा है। यह तो आप जानते है कि भारत एक गुलाम देश है अस्तु यहाँ की सरकार सिर्फ उन्हीं बातों में विशेष दिलचस्पी लेती है जिससे उसका स्वार्थ सधता है। यहाँ के पशुओं की नस्ल दिनों दिन ख़राब होती चली जा रही है क्योंकि इस बात का कोई पूरा प्रबन्ध नहीं है कि अच्छे अच्छे बिजार रक्खे जाँय जिनसे जो सन्तान पैदा हो वह मज़बूत और शक्तिशाली हो।

प्राचीन समय में तो यह प्रथा थी कि हर गांव में एक एक और नगरो व शहरो में दस दस बीस बीस बहुत अच्छी नस्ल के बिजार रक्खे जाया करते थे, उनको पूज्य भाव से देखा जाता था, उनके वास्ते खाने का सभी प्रबन्ध था और यहाँ तक था कि बिजार को खेतों में आजादी से चरने दिया जाता था। प्राचीन समय में यह आम रिवाज थी और प्रायः कहीं कहीं अब भी ऐसा देखा जाता है कि अगर कोई घर का बड़ा बूढ़ा मर जाता है तो उसके नाम पर बिजार छोड़ दिया जाता है और उसकी काफी अच्छी देख भाल रक्खी जाती थी पर शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आज कल बुरा से बुरा जानवर बिजार बनाया जाता है और उसके खाने पीने का कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता है। वह जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ मार खाता है यहाँ तक कि बड़े बड़े शहरो में चुँगी उन्हे पकड़ पकड़ कर मैला ढोने की करांचो के काम मे लाती है।

आज कल अच्छे बिजारों का अभाव ही एक मुख्य कारण है, जिसकी वजह से बहुत कमजोर और निकम्मी सन्तान पैदा होती है। बछड़े बजाय अच्छे खासे बैल होने के नाटे रह जाते है और बछिया बजाय दुधारू गाय होने के मामूली गाय बनती हैं, जो इस क़दर छोटी व कमजोर होती हैं कि दूध का देना तो दूर किनार रहा वे अपने बच्चों को भी पूरा दूध नहीं पिला सकतीं। इसका परिणाम यह होता है कि लोग इनको रखने में असमर्थ होते हैं और वे या तो बाजार में पड़ोसियों का नुकसान करने के लिये छोड़ दी जाती हैं या क़साई के हाथों बिकती हैं। इस प्रकार आज कल बड़ी तेजी से पशु-धन का नाश होता चला जा रहा है।

अब मैं आप महानुभावों का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि अमेरिका, कनैडा, स्वीटजरलैण्ड और हालैण्ड आदि स्वतन्त्र देशों में मनुष्य अपने पशु-धन की किस प्रकार तरक्की व उन्नति कर रहे हैं।

एक समय था जब भारत मे भगवान् कृष्ण गौवें चराते थे जिससे उनका नाम गोपाल पड़ा। वही दृष्टि हम आज स्वतन्त्र देशों मे देखते हैं। यह बताया जा चुका है कि किसी स्वतन्त्र देशमें चमड़े, हड्डी, चर्बी आदि के वास्ते पशु नही मारे जाते हैं। स्वतन्त्र देश पशुधन को अपने राष्ट्र उत्थान का एक मुख्य साधन समझते है और वह इस विषय मे वैज्ञानिक (Scientific) तरीको से हर प्रकार की तरक्की कर रहे हैं। पशुओ की नस्ल सुधारने की शिक्षा के वास्ते बड़े बड़े विश्व विद्यालय (Universities) और कालेज खोल रक्खे है। इस में काफी खोज (Research) की जा रही है। पशुओं की नस्ल सुधारने में काफी ध्यान दिया जा रहा है। वहाँ विजार अच्छे से अच्छे जानवर का बनाया जाता है। एक एक विजार की कीमत हज़ारो रुपये तक होती है। गायें सिर्फ दस दस सेर या पाँच पाँच सेर ही दूध नहीं देतीं बल्कि बीस तीस चालीस चालीस सेर और बाज बाज गायें तो पचास पचास सेर तक दूध देती हैं। अभी हाल में "भारत" में प्रकाशित हुआ था कि कैनेडा में एक गाय ने एक वर्ष मे ३८० मन दूध दिया जिससे ३८० आदमी रोज़ चाय पीते थे और जिसकी कीमत १३८००० रुपया कूती जाती है।

उन्हें इस क़िस्म की खुराक दी जाती है जिससे वे ज्यादा से ज्यादा दूध दे सकें। यहाँ पर पशु की खुराक का, सफाई का, उनके चरने का, गर्मी, सर्दी से बचाव का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध

किया जाता है। विदेशों में यह एक बड़ा और गम्भीर विषय होगया है। इसके ऊपर बड़े ग्रन्थ और पुस्तकें रची गई हैं। कई देशों का व्यापार पशुधन द्वारा यानी दूध, मक्खन, मलाई, दूध के ऊपर ही चलता है जैसे डेनमार्क, स्वीटजरलैंण्ड इत्यादि।

अब प्रश्न यह उठता है कि अपने देश के पशुधन की हालत यदि सुधारी जाय तो किस प्रकार सुधारी जा सकती है। मैं आपको ऊपर बता चुका हूं कि पूरा सुधार तो उसी हालत में हो सकता है जब कि हम लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करलें, लेकिन हमे यह सोचना है कि वर्तमान स्थिति में क्या कुछ उपाय हो सकते हैं जिनसे हम अपने पशुधन की रक्षा कुछ कर सकें।

मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार अपने उदार पाठकों की सेवा मे कुछ आवश्यक उपाय रखता हूं जिनको कार्य में लाने से बहुत कुछ कठिनाई हल हो सकती है।

१—प्रत्येक हिन्दुस्तानी को यह प्रतिज्ञा लेनी चाहिये कि वह चमड़े, चर्बी, हड्डी और खून आदि की वस्तु का इस्तैमाल नहीं करेगा-जैसे जूता, बक्स, विस्तरबन्द, गाड़ी, मोटर की पोशिश इत्यादि।

२—विदेशी कपड़ा या वह कपड़ा जिसमें चर्बी का लेप लगता हो, दवा, साबुन या अन्य कोई चीज जिसमें चर्बी का उपयोग होता हो, इस्तैमाल नहीं करेंगे।

३—वह सामान जो हड्डी से बनता हो या उसमें हड्डी का जुज लगता हो इस्तैमाल नहीं करेंगे।

४—वह रंग व सामान जो खून से बनता हो, इस्तैमाल नहीं करेंगे।

नोटः—आजकल हमारे सारे काम बग़ैर चमड़े, चर्बी, हड्डी, खून इत्यादि की वस्तुओं के चल सकते हैं जैसे जूता रबर का या केनवेस का, बक्स, साज, पोशिश, बिस्तरबन्द सब केनवेस या जीन के बन सकते हैं। बग़ैर चर्बी के लेप का कपड़ा खद्दर या हाथ का बना हुआ कपड़ा मिलता है। बग़ैर हड्डी के सारे सामान मिल सकते हैं। बग़ैर खून का रंग भी बनता है। बग़ैर चर्बी का साबुन वग़ैरः भी बाजार में मौजूद हैं। मैं पिछले दस वर्ष से इस बात का प्रयत्न कर रहा हूँ कि जहां तक हो सके चमड़े, हड्डी, चर्बी की वस्तु का इस्तैमाल न करूं। मैं अपना घोड़े का साज गाड़ी की पोशिश केनवेस का बनवाता हूँ। जूता मोटर के सोल और ऊपर केनवेस का पहनता हूं। मेरा काम बग़ैर चमड़े आदि की वस्तुओं के विना किसी दिक़्क़त के चल सकता है और चला जाता है।

५—हमको चुङ्गियों व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा ग्राम पञ्चायतों द्वारा इस बात का प्रबन्ध करना चाहिये कि अच्छे से अच्छे बिजार रक्खे जायं जिससे अच्छी सन्तान पैदा हो। पशुओं की नस्ल सुधारने पर भी हमको पूरा ध्यान देते रहना चाहिये।

६—जब कभी बन्दोबस्त हो उस समय सरकार और जमींदार से मिलकर कुछ जमीन चरागाह के वास्ते अवश्य छुड़वानी चाहिये।

७—आज कल हम देखते हैं कि हमारे कुछ भाई जिनके दिल मे दया है उन्होंने गौशालायें खोल रक्खी है जिनमे वे लंगड़ी, लूली और निठल्ली गायो की रक्षा करते हैं और हर वर्ष हजारों रुपया उनके लिये ख़र्च करते हैं। अगर वे सज्जन विचार से काम लें और इस विषय के किसी जानकार की सलाह का उपयोग करें

तो इन लूली, लंगड़ी निठल्ली गायों की रक्षा के लिये और भी बड़े बड़े काम कर सकते हैं जैसे अच्छे बिजारों का रखना, नस्ल का सुधारना, जनता के लिये अच्छे दूध का प्रबन्ध करना इत्यादि। इस लिये मैं चाहता हूं कि गौशाला के प्रेमी बजाय पत्तियों के सींचने के जड़ को सीचें, जिससे कि देश का लाभ हो।

८—अमेरिका आदि देशों में जब चारे की फस्ल होती है उस समय वे लोग चारे का काफ़ी स्टाक कर लेत हैं और जब चारे का अभाव होता है उस समय वे इसको अपने पशुओं के काम में लाते हैं। इसी प्रकार अगर हमारे ग्रामीण भाई या धनी लोग जब चारे की फस्ल हो उस समय अपने खेत से लाकर या दूसरों से ख़रीद कर चारे को स्टाक में रक्खा करें और उससे जब अकाल पड़े अपने पशुओं की रक्षा करें। इस प्रकार बहुत से पशुओं की रक्षा की जा सकती है। अगर हमारे देश-वासी अमेरिका की प्रथा के अनुसार साइलेज (Silage) का तरीक़ा काम में लावें तो बहुत क़िफ़ायत से चारा रक्खा जा सकता है। इसका तरीक़ा यह है कि एक कुयें के समान पक्की जमीन में गड्ढा खोद कर उसमें बरसात के दिनों में जो कुछ हरी घास वग़ैरह मिल सके ठूस ठूस कर भर दो और उसे छप्पर से छादो। जब ज़रूरत हो उसमें से निकाल लो। इस प्रकार तीन चार साल तक चारा मिल सकता है। इस क़िस्म का चारा पशुओ के बहुत उपयोगी होता है।

९—आज कल हम देखते हैं कि हमारे बहुत से बड़े अमीर आदमी मोटर, घोड़ा, गाड़ी आदि तो रखते हैं पर गाय नहीं रखते। जब उनसे कहा जाता है कि कम से कम एक गाय तो रखलो तो वह कहते हैं कि कौन आफ़त मोल ले। उस समय विचार उठता है कि मोटर, घोड़ा, गाड़ी जो फिजूल खर्च है उसकी आफ़त तो

खुशी खुशी बर्दाश्त की जाती है पर एक गाय जो जीवन को बढ़ाती है व बल पुरुषार्थ देती है, उसको नहीं रक्खा जाता। यही कारण है कि आये दिन बड़े आदमी कमजोर व बीमार रहते हैं और सैकड़ों रुपया हकीम, डाक्टरों में खर्च करते हैं।

मेरा विचार है कि वह गृहस्थ गृहस्थ नहीं है, वह हिन्दू हिन्दू नही है जो कम से कम एक गाय नहीं रखता है। ग़रीबा के कारण कोई नहीं रख सके तो दूसरी बात है। पर जो इस योग्य हैं उनको तो कम से कम एक गाय अवश्य ही रखनी चाहिये। अधिक रक्खें तो अति उत्तम बात है। जिन महानुभावों के भैंस या गाय है वही घी और दूध का आनन्द पा सकते हैं। पर जो बाज़ार से दूध मोल लेते हैं वे यह ख्याल करके कि दूध बहुत तेज़ है बहुत ही कम मंगाते हैं या बिल्कुल नहीं मंगाते हैं। जो दूध बाजार से आता है वह या तो पानी मिला होता है या मक्खन निकाला हुआ होता है, जो मुश्किल से लाभदायक होता है। इस प्रकार से गाय का रखना उत्तम और वाञ्छनीय है।

अब प्रश्न उठता है कि अगर सरकार विदेशी है तो क्या हमारे देशी राज्य इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकते हैं ? हाँ ! अगर रजवाड़े इस ओर ध्यान दें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। पर अब उनमें भी गौ-भक्ति की अपेक्षा मोटर-भक्ति ही अधिक है। वे मोटरों का सालाना बजट लाख दो लाख, दस लाख तक अवश्य रख लेते हैं पर गौशाला का हजार दो हजार का होना भी ज्यादा समझा जाता है। रजवाड़े अगर चाहें तो बड़ी तरक्की कर सकते हैं। उनको इस विषय का एक अलहिदा विभाग खोलना चाहिये जिसके द्वारा शहर व ग्रामों में अच्छे अच्छे बिजारों का प्रबन्ध करा के, पशुओं की नस्ल सुधारने, पशुओं के वास्ते चरा-

गाह का प्रबन्ध करा के, घी और दूध शुद्ध तथा सस्ता बिकवाने इत्यादि बातों का समुचित रूप से प्रबन्ध कराया जावे व उसके उपाय सोचे जावें। यह सब बातें वैज्ञानिक ढंग से होनी चाहियें। अगर जरूरत हो तो इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ विद्यार्थियों को अमेरिका, कैनेडा, स्वीटज़रलैण्ड आदि देशों में भेज देना चाहिये और अगर हो सके तो किसी एक अच्छे जानकार को कुछ समय के वास्ते विदेश से बुला भी लेना चाहिये। इस प्रकार वहाँ से जानकार के आने से और विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक (Practical & Theoritical) शिक्षा ग्रहण के बाद बहुत कुछ तरक्की की जा सकेगी।

इसके अलावा हिन्दू विश्व-विद्यालय के मुख्य प्रबन्धकर्ताओं से भी मैं अनुरोधपूर्वक निवेदन करूँगा कि वे पशुधन की उन्नति के लिये भी कोई विशेष शिक्षा-विभाग खोल दें जिससे भारत और भारतीयों का उद्धार हो।

यह तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं कि भारतवर्ष एक आर्य्य संस्कृति का देश है। यहां के आदमी ज्यादातर नाज और शाक पात पर रहते हैं अर्थात् शाकाहारी (Vegitarian) हैं। भारतवर्ष के पतन का अर्थात् गुलामी के कारणों में एक कारण पशुधन का ह्रास भी है। यहां के बाशिन्दों की मुख्य खुराक दूध और घी है। जब दूध और घी का ह्रास होगया तो यह निश्चय है कि यहां के मनुष्य कमजोर और दुर्बल होंगे। इसी का यह परिणाम है कि आज जिस बच्चे, नवयुवक या विद्यार्थी को देखो वह निहायत कमजोर हड्डियों के जानदार पुतले के समान नजर आता है। इसका कारण यह है कि पहिले आजकल नब्बे फीसदी मनुष्यों को दूध घी मिलता ही नहीं और अगर दस बीस फीसदी

को मिलता भी है तो वह निकम्मा और मिलावटी होता है यानी यों कहना चाहिये कि ख़ालिस और उम्दा घी या दूध मुश्किल से एक फ़ीसदी को मिलता होगा।

प्रिय बन्धुओ ! अगर आप भारतीय हैं, यदि आपके हृदय में मातृ-भूमि का प्रेम है और आप चाहते हैं कि हम और हमारी सन्तान एक अच्छी अवस्था को प्राप्त हों तो हम लोगों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि तन, मन, धन से अपने पशुधन की सहायता करें, वरना वही हालत होगी कि 'अब पछताये का होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत'।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैंने जो निवेदन किया है उस पर मेरे देश भाई अवश्य ध्यान देंगे और उसको कार्य्यरूप में परिणत करेंगे।

देशी व्यापार और व्यवसाय

किसी देश की उन्नति अथवा अवनति उस देश के व्यापार (वाणिज्य) और व्यवसाय पर निर्भर है। यदि एक देश का व्यापार तथा व्यवसाय उन्नतावस्था में है तो निश्चय ही उस देश के निवासी सुख शान्तिमय जीवन व्यतीत करेंगे। इसके विपरीत यदि उस देश का वाणिज्य-व्यवसाय अवनतावस्था मे है तो उसके निवासी सदैव दु:खी और चिन्तित रहेंगे। जिस प्रकार एक शरीर पाचन क्रिया से शोभा और सुन्दरता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक देश अपने उन्नतिशील व्यापार से शोभा, सुख एवं शान्ति को प्राप्त होता है। यदि किसी देश को पराधीनता के पाश में जकड़ना हो तो उसके वाणिज्य-व्यवसाय को नष्ट करदो और अगर किसी देश को अपनी परतन्त्रता की बेड़ी को काट कर स्वतन्त्रता की सुखमय अवस्था में पहुंचाना हो तो उसे सबसे पहले अपने व्यवसाय-वाणिज्य की रक्षा और उन्नति करने में सतत: प्रयत्नशील होना पड़ेगा और येनकेन-प्रकारेण उसे अपने हाथ में रखना होगा। जब तक वाणिज्य-व्यवसाय का अधिकार अपने हाथ में नहीं होगा तब तक उसे वाणिज्य-व्यवसाय को) पूर्ण उन्नतावस्था में पहुंचाना और देश को सुखमय बनाना अत्यन्त कठिन और दुस्साध्य है। परतन्त्र देश को पग पग पर बड़ी बड़ी कठिनाइयों और अड़चनों का सामना करना पड़ता है। तिस पर भी वे अपने वाणिज्य-व्यवसाय की यथोचित उन्नति नहीं कर पाते।

व्यापार और व्यवसाय में क्या अन्तर है? यह निम्न-लिखित विवेचन से स्पष्ट हो जायगा। किसी भी प्रकार के उपयोग की वस्तुओं के क्रय वक्रय को व्यापार कहते हैं और किसी प्रकार के कच्चे माल से भिन्न भिन्न प्रकार की व्यावहारिक वस्तुओं के बनाने की क्रिया को व्यवसाय कहते हैं। व्यवसाय दो प्रकार का होता है, एक तो हाथों द्वारा किया जाता है दूसरा मैशीनरी द्वारा सम्पन्न होता है।

प्राचीन भारतवर्ष में यानी मुसलमानों के आगमन से पूर्व, और मुस्लिम शासन-काल (यानी अंग्रेजी शासन से पहले) में यहां का व्यापार और व्यवसाय काफी तरक्की पर था। यहां के व्यापारी अपने अपने माल को जहाजो द्वारा पश्चिम में परसिया, यूनान और मिश्र तक और पूर्व में चीन तक लेजाया करते थे। वहां के बाज़ारो में अपने माल को बेच कर वहां के माल को खरीदते और उसे लाकर देश के बाज़ारों में बेचते थे। यह क्रिया प्राचीन भारत मे अधिक काल तक प्रचलित रही। देश की व्यापारिक और व्यवसायिक स्थिति बड़ी ही अच्छी रही। देश धन धान्य से परिपूर्ण और समृद्धशाली था, वर्त्तमान समय की सी शोचनीय अवस्था न थी और न रोटी के एक टुकड़े तथा कपड़े के एक फटे चिथड़े के लिये लाले पड़े थे। अधिकतर यह व्यापार और व्यवसाय, दस्तकारी का होता था। ईस्वी सन् १८०० तक भारतवर्ष और एशिया के अन्य देशों में जैसे चीन, तिब्बत, ईरान और मिश्र इत्यादि में सारी व्यवहार (इस्तैमाल) की वस्तुओं को दस्तकारी द्वारा अर्थात् हाथ से अथवा छोटे मोटे यन्त्रों द्वारा तैयार करने की प्रथा जारी रही। उस समय तक कम से कम भारतवर्ष में तो कोई मिल या मशीन के कारखाने नहीं थे बल्कि फैक्टरियां अवश्य थीं जिनमें कर्घों या चर्खो या छोटी मोटी मैशीनों द्वारा

सहस्त्रों मनुष्य काम करके जीवन निर्वाह करते थे। इन छोटी छोटी मैशीनों के ज़रिये यहां इतने अधिक परिमाण में माल पैदा किया जाया करता था कि जिसे अन्य देशों में पहुंचाने के लिये सैकड़ों नहीं बल्कि हज़ारों जहाज़ों की आवश्यकता पड़ती थी। प्राचीन समय में यानी यूरोपियन जातियों के आने के पहले तक यहां हर प्रकार के सामान के बनाने वाले बड़े बड़े कारीगर थे। रुई, ऊन, सन, काठ, पत्थर, हाथी दांत, चमड़ा, सोना, चांदी, पीतल, तांबा, रांगा इत्यादि चीजों से इस्तैमाल की वस्तुयें तैयार करने वाले एक से एक निपुण और चतुर कारीगर मौजूद थे। हां लोहे का काम जरूर कम था, वह सिर्फ इतना था कि जिसे आदमी अपने हाथों से कर सके। यहां बड़े बड़े लोहे के कारख़ाने नहीं थे लेकिन जीवन की आवश्यकता के सारे सामान आसानी से तैयार हो जाया करते थे।

बढ़िया से बढ़िया और महीन से महीन रुई व जूट के कपड़े बंगाल विहार और उड़ीसा इत्यादि में तैयार हुआ करते थे। ऊन के बढ़िया से बढ़िया कीमती शाल दुशाले, कश्मीरे, पट्टू और पशमीना कश्मीर और पंजाब में तैयार हुआ करते थे। पत्थर का बढ़िया से बढ़िया मकान व मन्दिर व बहुत सी छोटी छोटी इस्तैमाल की चीजे आगरा, मथुरा. बनारस, मिर्ज़ापुर, चुनार और राजपूताना इत्यादि जगहों में तैयार हुआ करती थीं। हर प्रकार के धातु के वर्तन, चमड़े का सामान, हड्डी या हाथी दांत का सामान मुख्य मुख्य स्थान पर तैयार हुआ करता था। सारांश यह है कि यहां पर हर प्रकार का करोड़ों रुपयों का सामान हर साल तैयार होकर खुश्की या जहाज़ों द्वारा विदेशों को जाया करता था और विदेशों से लाखों करोड़ों रुपये का सामान यहां बिकने को आया करता था जैसा कि हमें सम्राट

चन्द्रगुप्त अशोक, पृथ्वीराज चौहान, तुग़लक और मुग़ल बादशाहों के इतिहासों से ज्ञात होता है।

प्राचीन समय में भारतवर्ष अर्थात् सन् १७५० ई० तक एक बहुत खुशहाल, सम्पत्तिशाली, व्यापार, व्यवसाय और कारीगरी का एक मुख्य केन्द्र था। जब कि अमेरिका और यूरोप आदि देशों मे लोग कपड़ा, काठ, धातु और पत्थर इत्यादि के सामान को हाथ से अच्छी तरह बनाना भी नहीं जानते थे उस समय भारतवर्ष हाथ की कारीगरी से ऐसी २ चीजें बनाता था जिसे देख कर विदेशी दंग होजाते थे, बाद में यहीं व्यापार और व्यवसाय आपस की कलह और लड़ाइयों के कारण छिन्न भिन्न होगया। जब एक ओर अमेरिका यूरोप आदि देश लगातार परिश्रम करके और नये नये आविष्कार करके भिन्न २ प्रकार की मैशीनरी, इञ्जन, बिजली. तारबरकी आदि के आविष्कारों में लगे हुए थे, भारतवर्ष उन्नतिक्षेत्र में पिछड़ रहा था और अपने काम को आगे बढ़ाना तो क्या उस स्थिति में कायम रखने में भी असमर्थ हो रहा था। यूरोप और अमरीका के परिश्रमी कारीगरो ने जिन मशीनों का आविष्कार किया उनकी प्रतियोगिता हमारे असंगठित व्यवसायी हाथ की कारीगरी से न कर सके। इसके अतिरिक्त इस समय तक हमारे देश का एक भाग ऐसी शक्ति का गुलाम हो चुका था जो अपने देश के व्यापार से सम्बन्ध रखती थी। उन्होंने यहां के कारीगरो का बलिदान देने में तनिक भी आगा पीछा नहीं किया। यहां कारीगरों के लिये इसी देश में अनेक असुविधाएँ और रोड़े पैदा कर दिये गये थे। इसी समय जिन जिन स्वतन्त्र देशों में भारत का सूती, ऊनी कपड़ा और सामान जाता था वहाँ वहाँ की हुकूमतों ने अपने यहाँ के माल को तरजीह देने के ख्याल से भारत से आने वाले माल पर बड़े बड़े कर लगा दिये

उन्होंने यहाँ तक कानून बना डाले कि अगर कोई उसके देश का निवासी भारतवर्ष की बनी हुई चीजें और ख़ास कर कपड़े को इस्तैमाल करता पाया जावे तो उसको बहुत भारी आर्थिक दण्ड दिया जावे। इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ से विदेशों को कपड़ा जाना क़रीब २ बिल्कुल बन्द होगया और साथ ही अंग्रेज और फ्रान्सिसियों ने जो यहाँ पर व्यापार के ख़याल से आये थे आपस की फूट से लाभ उठाकर अपना पञ्जा और भी आगे बढ़ाना शुरू कर दिया। यहां तक कि सन् १८५७ ई० के बाद अंग्रेज निर्विवाद यहां के सम्राट होगये और बाद में जिस प्रकार हो सका इन्होंने इंगलैण्ड के वाणिक व्यवसाय को तरक्की देना शुरू कर दिया, यहाँ के व्यापार और व्यवसाय की अवनति होने लगी। यहां तक कि भारतवर्ष में सिवाय कच्चे माल की उपज के कोई विशेष काम न रहा। यहां से कच्चा माल रुई, ऊन, जूट, गेहूँ और तिलहन आदि को खरीद कर रवाना करना और बिलायत से सूती व ऊनी कपड़ा, लोहे का सामान, बिसात खाने आदि का सामान मंगाकर यहां कुछ मामूली मुनाफ़ा में वेचना ही यहां का सिर्फ़ मुख्य व्यापार रह गया है। जो थोड़े बहुत कारखाने खुले हैं, उनमें भी मशीनें तो विदेशों की हैं। कुछ मिल्स या फैक्टरियां भी खोली हैं। अन्य अन्य छोटी छोटी चीज़ों के लिये भी हमें योरुप और अमरीका के व्यौपारियो के आश्रित रहना पड़ता है।

आज की तरह प्राचीन समय में बाजार विलासिता की सामग्रियों से भरे हुए न थे और इस लिये चीज़ों का इतना कम क्रय विक्रय न था। इसका कारण सिर्फ़ यही था कि उस समय में एक तो लोगों की इच्छायें बहुत कम थीं और दूसरे प्रत्येक गांव अपनी अपनी आवश्यकता की चीजें जैसे—कपड़ा, लोहे का सामान, काठ का सामान इत्यादि अपने यहां ही तैयार कर लिया

करते थे। लुहारों से लोहे का सारा सामान और बढ़इयों से काठ का सामान तैयार करा लिया करते थे। इस प्रकार गांवों की जरूरियात गांवों ही में पूरी हो जाया करती थी, लेकिन साथ साथ बात यह भी थी कि बड़े बड़े नगरों व शहरों में हुनर कला व दस्तकारी का व्यवसाय खूब चलता था जिनसे सैकड़ो नहीं वल्कि हजारों स्त्री, पुरुष जीविका पैदा करते थे। लोग खूब शारीरिक परिश्रम करते थे और उनमे इतनी धोखेवाजी, असत्यता और दिखावटी पन नहीं था जितना कि आज कल देखा जाता है।

उस जमाने में सैकड़ों नहीं, वल्कि हजारो किस्म की चीजे तैयार की जाया करती थीं। वे सब दस्तकारी के जरिये से होती थीं। इस प्रकार लाखो विधवाओं व अन्य स्त्रियों की जीविका चला करती थी। वर्त्तमान समय में गांवों की दस्तकारी (Village Industry) विल्कुल मारी जा चुकी है। इसके अलावा शहरों मे जो हुनर व दस्तकारी थी वह भी विदेशों से विदेशी माल के आने के कारण और यहां जगह व जगह मिल-फैक्टरी खुलने और मैशीनरी के लग जाने से, क़रीब क़रीब नहीं के वरावर रह गई हैं; इसके कारण लाखों नही, वल्कि करोड़ों आदमी बेकार होगये हैं। जिन्हे मजबूरन साल में आठ महीने खेती करनी पड़ती है और बाकी चार महीने उन्हें बेकार बैठना पड़ता है, परन्तु हमे पूज्य महात्मा गान्धी को कोटिशः धन्यवाद देना चाहिये कि उन्होंने चर्खे द्वारा गांवों और घरो की दस्तकारी को पुनर्जीवित कर दिया है, जिससे आज लाखों स्त्री पुरुष अपनी जीविका उपार्जन कर किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

आज हमारे व्यापार की दशा क्या है ? भारत वर्ष जैसी धन धान्य पूर्ण भूमि में भी जन्म लेकर हम इंगलैण्ड और जर्मनी जैसे

देशों से व्यवसाय में पीछे क्यों हैं? उसका कारण है हमारे चरित्र बल की कमी और व्यापारिक सत्यता का अभाव! हममें एक ही बार मुर्गी के सब अंडे निकाल लेने की प्रवृत्ति है, हम इस बात को भूल गये हैं कि कोई भी व्यापार जिसका आधार सत्य-शिला पर नहीं होता वह अधिक दिन तक टिक नहीं सकता—जिस व्यापार सम्बन्ध में बिकवाल और खरीदार दोनों का हित न हो वह अधिक दिन स्थिर नहीं रह सकता-हम तो व्यापार को एक जूआ-समझते हैं। जिसमें एक हारता है और दूसरा जीतता है। अगर खरीददार ज़रा असावधान रहा तो दुकानदार उसे उलटे उस्तरे से मूंड़ने की चेष्टा करता है और अगर दुकानदार चूक गया तो खरीददार उसके कपड़े लत्ते ले जाना चाहता है—इस प्रवृत्ति को आप प्रति जैसे रुई, चावल, गुड़, कपड़ा, गल्ला, तिलहन वान, तेल, जीरा, घी, दूध, आटा, चूना, गोटा और जेवर इत्यादि वस्तुओ मे मिलावट, तोल की कमी और खोतेपन के सिवाय और कुछ नहीं होता है।

रुई तैयार कराने में अगर माल सात नम्बर का है, उसमें नीचे नम्बर की रुई मिला देते हैं और कभी कभी तो ऐसा देखा गया है कि गाँठ बंधवाने में उसके अन्दर धूल, कंकड़ तथा कचरा तक बंधवा देते है। जब वे गांठें दूसरे स्थानों में या विदेशों को जाती हैं तो एक समय तोलने वाले को अवश्य धोखा होता है। पर बाद में ऐसे माल को या तो खरीदते नहीं, और अगर खरीदते हैं तो काफ़ी बट्टे से खरीदते हैं, जिसके कारण बिक्री वाले को काफ़ी घाटा उठाना पड़ता है और अगर कोई अच्छा माल तैयार कराता है तो उसको भी नुकसान उठाना पड़ता है क्योंकि अच्छे का मुंह किसने मारा? बुरे ने। इस प्रकार व्यापार की (Credit) उठती जाती है।

कपड़ा जो जुलाहे बुनते हैं उसमें सिरा कुछ अच्छा होता है और अन्दर निर्बल होता है। कपड़ा जो मिलों से निकलता है उस पर अगर बीस गज लिखा है तो मुश्किल से उन्नीस साढ़े उन्नीस गज बैठता है। धोती जोड़े जो दस गज होते हैं वे नापने पर नौ गज निकलते हैं। कपड़े का नमूना कुछ और होता है और दिया कुछ और जाता है। एक ही नम्बर के माल को, अगर कहीं रुई तेज हो जाती है, तो कम वजन का बनाने लगते हैं। कपड़े को मोटा बनाने के वास्ते उसमें मांड़ दे देते हैं। यहां तक देखा गया है कि जो कपड़े का थान दस सेर का है वही जब धोया जाता है तो मुश्किल से आठ सेर का बैठता है। सूत ऐसे ऐसे कमजोर और निकम्मे लगाते हैं कि कपड़ा बहुत जल्द फट जाता है और फिर कपड़े को सफाई देने के वास्ते जब उसे तेजाब से धोते हैं तो और भी जल्द फटता है। यह तो मिल वालों की बात हुई। अब दुकानदारों की ओर ध्यान दीजिये। वे ज्यादातर कम नापते हैं, नक़ली को असली बतलाते हैं और प्रायः विदेशी को स्वदेशी कहते हैं। झूंठ तो इतना अधिक बोलते हैं कि बाज़ बाज़ मौक़े पर ग्राहक से ड्योढ़े तथा दूने दाम ले लेते हैं और अगर ग्राहक दस बीस क़िस्म का माल देखता है और नहीं खरीदता है तो उससे अंट संट कह डालते हैं। ग्राहकों के फंसाने को बाज बाज दुकानदार दलाल तक लगा रखते हैं।

गुड़ के व्यापारी भी अधिकतर ऐसा ही करते हैं कि पेटे में खराब माल और मुड्ढे पर ऊपर माल भरते हैं। इसी प्रकार जीरे वाले जीरे में बजरा और मिट्टी मिला कर चालान करते हैं। घी वाले घी में मूंगफली व बिनौले का तेल वेजिटेबुल घी

(Vagitable Ghee) और चर्बी तक मिला देते हैं। तेल मे जो मद्दा तेल होता है उसे मिला देते हैं। दूध वालों के लिये पानी मिलाना तो मामूली बात है, कितने तो मक्खन निकाल कर उसे बढ़िया दूध कह कर बेचते हैं। चांदी सोने के माल मे खोटा मेल देते हैं। यहां तक कि हर अच्छी चीज में निबल, पुरानी व सस्ती चीज मिलाना, कम तोलना, कम नापना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

इस प्रकार जनता को धोखा देकर काफ़ी रुपया कमाते हैं और बाद में ज्यादा मालदार होने के ख़याल से सट्टा या फाटका करते हैं। उसमे अधिकतर दुकानदार नुक़सान उठाते हैं और इसके अतिरिक्त ब्याह आदि उत्सव मे कर्ज (ऋण) लेकर काफ़ी रुपया खर्च कर डालते हैं और प्रति दिन अनाप सनाप खर्च रखते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि हर तरह बेईमानी करते हुये भी अखीर मे ऐसे लोगो के काम बहुधा फेल हुआ करते हैं। उनमें से कुछ तो रुपया रख कर (छिपा कर) दिवाला बोल देते हैं और कुछ को मजबूरन दिवाला बोलना पड़ता है क्योंकि रुपया देने वाले महाजनो या हिस्सेदारो से छुटकारा पाने का उनके लिये अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता।

इन पामर प्राणियों को यह नहीं मालूम कि हम इस प्रकार जो अनुचित और धोखे का काम कर रहे हैं, उसके पाप के भागीदार उनके घर के लोग, समाज के लोग अथवा अन्य लोग होंगे या नहीं ? जब मुसीबत पड़ती है तब कोई भी साथी नहीं होता। उन्हीं को सारी तकलीफ़ें और मुसीबतें उठानी पड़ती हैं और बाद मे अपनी कुकीर्ति पर पश्चाताप करना पड़ता है कि मैंने ऐसे [illegible]

अगर हमारे व्यापारी और दुकानदार अपनी साख बाज़ार में ज़माना चाहते हैं तो उन्हें एक उसूल पर काम करना चाहिये। जैसे उनको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि पाव आना, आध आना, एक आना अथवा दो आने रुपया मुनाफा लेना है तो उससे ज्यादा नहीं लेना चाहिये, ठीक नापना वा तोलना चाहिये। अच्छी चीज़ में बुरी चीज़ नहीं मिलानी चाहिए। जैसा माल हो उसे वैसा ही बताना चाहिये। असली को असली, नक़ली को नक़ली, नया को नया और पुराने को पुराना बतलाना चाहिये। अगर इस प्रकार व्यापार और दुकानदारी की जायगी तो दुकानदारों और व्यापारियों की बाज़ार मे धाक़ व साख बैठ जायगी, जिससे उनका और ख़रीदार का व्यर्थ समय नष्ट होने से बच जायगा और सदा उनका व्यापार तरक्की पाता जायगा।

हम अपने व्यापारियों में संगठन का बड़ा अभाव देखते हैं; जिसके कारण व्यापार को बड़ा धक्का पहुंच रहा है। एक शहर के व्यापारियों को इस प्रकार संगठन करना चाहिये:—

मान लो उस शहर में मुख्य मुख्य पन्द्रह प्रकार के व्यापार व व्यवसाय चल रहे हैं। उनमें से प्रत्येक को अपनी अपनी पञ्चायत क़ायम करनी चाहिये और हर पञ्चायत के नियम बनाने चाहियें। इस पञ्चायत की बैठक महीने में कम से कम एक बार हुआ करे और इस बात पर विचार किया करें कि उनके व्यापार व व्यवसाय की उन्नति किस प्रकार हो सकती है। उन्हे पहिले तो आपस मे कोई झगड़ा नहीं होने देना चाहिये और अगर मजबूरन हो भी जाय तो पञ्चायत द्वारा निबटवा लेना चाहिये। अक्सर ऐसा देखा गया है कि पञ्चायत क़ायम हो जाती है, लेकिन उसके पदाधिकारी पक्षपात में पड़ जाते हैं, या कोई ख़ास दुकानदार जिनके स्वार्थ में

हानि होती है, वे पञ्चायत को खण्ड बण्ड करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे मौक़ों पर लोगों को थोड़ी बुद्धिमत्ता और दृढ़ता से काम लेना चाहिये। जब एक बार पञ्चायत की लोगों पर धाक बैठ जायगी तो उसके द्वारा बड़े बड़े काम आसानी से हो सकेंगे और उनका व्यापार दिन दूना रात चौगुना तरक्की पकड़ता चला जायगा। जब तमाम व्यापारियों व व्यवसाइयों की पञ्चायतें क़ायम हो जांय तो उसके बाद एक स्थानीय केन्द्रिय संस्था या पञ्चायत क़ायम करनी चाहिये जिसको अंग्रेज़ी में Trade Association या Chamber of Commerce कहते हैं। इसमें प्रत्येक पञ्चायत में से एक या अधिक से अधिक तीन या चार प्रतिनिधि आने चाहियें। इस प्रकार जब यह संस्था (Trade Association) क़ायम हो जाय तो उसके नियम बना लेने चाहियें और पदाधिकारी चुन लेने चाहियें और इसका कार्यालय किसी मुख्य स्थान पर होना चाहिये। अगर हो सके तो इस संस्था की रजिस्टरी करा लेना चाहिये। इस संस्था द्वारा व्यापार व व्यवसाय की सारी साधारण (General) बातों पर विचार होना चाहिये जैसे तार, चिट्ठी व टेलीफून, चुँगी, बैङ्क, और रेलवे इत्यादि सम्बन्धी बातों पर बड़ी आसानी और सफलतापूर्वक लिखा पढ़ी की जा सकती है। मान लो कि डाक नियमित रूप से नहीं बँटती है या तार देर से मिलते हैं, प्रवेश कर (Terminal Tax) किसी वस्तु पर ज्यादा है, रेलवे अमुक माल पर विशेष रेट काट कर रेट बढ़ाती है इत्यादि बातों की लिखा पढ़ी होनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि अगर कोई एक व्यक्ति लिखा पढ़ी करता है तो उसका नहीं के बराबर असर होता है और जब एक संस्था लिखा पढ़ी करती है तो उसका पूरा असर पड़ता है और शिकायत फ़ौरन दूर होजाती है। इसके अतिरिक्त इस संस्था को यह देखना चाहिये

कि यहाँ कौन कौन से ख़ास व्यापार और व्यवसाय चालू हैं और उनकी किन किन तरक़ीबों से तरक्की हो सकती है, फिर उनको काम में लाना चाहिये।

इसके अलावा जो स्थायी मुख्य व्यवसाय हों उनको तरक्की देने के वास्ते कुछ वजीफ़े निकाल कर कुछ विद्यार्थियों या कारीगरों को दूसरे स्थानों पर निपुण होने के वास्ते भेजना चाहिये और जब वे उस विषय की शिक्षा प्राप्त कर आवें तो उनके द्वारा नगर में और लोगों को उस विषय की शिक्षा देने की व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे कि वह व्यवसाय काफ़ी तरक्की पा सके इसके अलावा जो झगड़े पञ्चायतें तै नहीं कर सकी हो, उनको इस केन्द्रीय संस्था द्वारा तै कराना चाहिये। ऐसी संस्था का एक सदस्य स्थानीय चुँगी (Municipal Board) मे बतौर मेम्बर के जा सकता है। जहाँ उसके लिये स्थान नियुक्त न हो तो उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह सदस्य वहाँ जाकर व्यापारियों के हितों की रक्षा करेगा और अगर यह संस्था जोरदार हुई तो उसका एक सदस्य प्रान्तीय कौन्सिल तक में जा सकता है।

अगर मुख्य मुख्य व्यापार की पञ्चायतों का ठीक ठीक संगठन होजाता है, तो हर पञ्चायत को अपने व्यापार के अनुसार नगर की इस केन्द्रीय संस्था के ख़र्च के वास्ते मासिक या सालाना चन्दा देना चाहिये परन्तु प्रारम्भिक दशा मे जब तक संगठन ठीक ठीक न हो पाया हो तब तक जो जो सदस्य हों उनको सालाना चन्दा देना चाहिये ताकि संस्था का सम्पूर्ण व्यय आसानी से चल सके।

यदि इस तरह देश के व्यापार और कला कौशल के हितों की रक्षा करने के लिये हर नगर में मज़बूत संगठन हो जाय

तो वह सरकार और स्थानीय संस्थाएँ चुंगी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि से भी अपने हितों की रक्षा के लिये सहायता प्राप्त कर सकता है, कानून बनवा सकता है और अपने माल की रक्षा के लिये बाहर के आने वाले माल पर कर लगवा सकता है। मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष इस समय एक परतन्त्र देश है और उसका शासन भारतीय हित की दृष्टि से न होकर इङ्गलैंड के व्यापारियों के हित की दृष्टि से ही होता है। इसमें सन्देह नहीं कि हम अपने व्यापार और व्यवसाय को उस प्रकार उन्नतिशील नहीं बना सकते जिस प्रकार कि एक स्वतन्त्र देश। फिर भी क्या नौकरशाही हमें इस बात के लिये मजबूर कर रही है कि यहाँ के व्यापारी, मिल मालिक, फैक्टरी वाले, दस्तकार या कारीगर झूंठ बोलें, धोखा दें, निबल और नाप में कम माल तैयार करें या दिखावे में चटकीला और बेपायेदार माल तैयार करें; नहीं, यह तो स्वयं हम में अपनी आत्मा का विश्वास न होना ही है क्योंकि ये लोग यह ख्याल करते हैं कि सस्ता माल तैयार करने में ज्यादा बिकेगा पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। मुमकिन है कुछ दिन तक धोखा चल जाय पर अन्त में परिणाम में इन लोगों को बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है यहाँ तक कि बहुत से कारखाने फेल हो जाते हैं और बिगड़ जाते हैं। आज संसार में जर्मनी के माल की इतनी धाक क्यों है इसका मुख्य कारण यही है कि जैसा वह अपने माल के बारे में कहता है, वैसा ही निकलता है। जितना वह लिखता है उतना ही माल उसके भीतर निकलता है।

इस लिये मैं अपने व्यापारी भाइयों, मिल मालिकों, फैक्टरी वालों, कारखाने वालों और कारीगरों इत्यादि से सविनय प्रार्थना करूँगा कि जहाँ तक विदेशी सरकार की हुकूमत में वे स्वयम् अपने व्यापार की, व्यवसाय की, अपने चरित्र बल सचाई,

ईमानदारी, संगठन इत्यादि से उन्नति कर सकते हैं अवश्य करें। जो अपनी कमजोरियाँ हैं उनका सरकार को मत्थे नहीं मढ़ना चाहिये।

व्यापारी भाइयों, मिल मालिकों और दस्तकारों इत्यादि को मेरे तुच्छ विचारानुसार निम्न लिखित बातों का अवलम्बन करना और उनका ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है:—

(१) किसी व्यापार व व्यवसाय करने के पेश्तर उसका शिक्षण होना चाहिये।

(२) सदा अपने उसूल के अनुसार मुनाफा चढ़ाकर ठीक ठीक दर और भाव बतलाना चाहिये।

(३) विदेशी को स्वदेशी, पुराने को नया, नकली को असली नहीं बताना चाहिये !

(४) कम तोलना, कम नापना, कच्चे को पक्का बतलाना, झूठे को सच्चा बताना बुरा है। लेने के बाँट और, देने के बाँट और नहीं होने चाहिये। अर्थात् एक से होने चाहिये।

(५) सदा नमूने के अनुसार माल होना चाहिये जितना ऊपर लिखा हो उतना ही बैठना चाहिये। जिस तरह का नमूना हो, माल भी उसी क़िस्म का होना चाहिये।

(६) अगर कोई माल कच्चा है या दिसावर का है तो उसे वैसा ही बताना चाहिये।

(७) सदा ग्राहक से नम्र और मृदुभाषी होना चाहिये।

(८) सदा इस बात का ख़याल रखना चाहिये कि अगर मैं ग्राहक को धोखा देता हूं या मक्कारी, या बेईमानी से पैसा पैदा करता हूं तो उसका फल मुझको ही भुगतना पड़ेगा और अन्त में मरने पर शुभ और अशुभ कर्म ही साथ जायँगे।

(९) अपनी बात को पक्का और साख को दृढ़ रखने का उद्योग करना चाहिये।

(१०) थोड़े मुनाफे पर अच्छे माल को देकर रोज़गार को व्यापक बनाने का उद्योग करना चाहिये।

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"

—गोस्वामी तुलसीदास ।

× × × ×

"छिड़ा आज है पाप पुण्य का युद्ध अनोखा एक सखी ।
मर जावें पर साथ न देंगे पापों का है टेक सखी ॥"

—सुभद्रा कुमारी ।

× × × ×

"Never despair or despond! Go on thoroughly united, come weal, come woe—never to rest but to persevere with every sacrifice till the victory of Self Government is won".

—Dada Bhai Noroji.

× × × ×

"निरधन हों धनवान, परिश्रम उनका धन हो ।
निरबल हों बलवान, सत्यमय उनका मन हो ॥
हों स्वाधीन, गुलाम, हृदय में अपनापन हो ।
इसी आन पर कर्मवीर तेरा जीवन हो ॥"

—सुभद्रा कुमारी ।

जातीय जीवन

मनुष्य मे अगर कोई सार वस्तु है तो वह जीवन है। अगर मनुष्य में जीवन नहीं है, तो उसका जीवधारी शरीर एक मृतक शरीर के तुल्य है। इसी प्रकार जिस समाज, जाति अथवा देश के लोगों में जीवन न हो तो उनका होना न होना दोनों बराबर है, क्योंकि बग़ैर जीवन के संसार में व्यवहार अथवा शारीरिक, मानसिक या आत्मिक उन्नति के कोई भी कार्य नहीं किये जा सकते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि समाज में जीवन किस प्रकार पैदा किया जाता है? जाति, देश व समाज के महान् व्यक्तियों ने जो वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ, निपुणता, दक्षता, वैभव, उन्नति आदि के बड़े बड़े कार्य किये हैं उनको इस ढंग से लिखा जाना चाहिये कि जो उन्हें सुनें या पढ़ें तो उनके हृदय में एक क़िस्म की बिजली सी दौड़ जाय और वे उन्हीं के अनुसार अपना जीवन बनाने के लिये कटिबद्ध हो जायं। जिन जिन देश के लेखकों और इतिहास कारों ने इस उसूल का पालन किया है उन्होंने अपने गिरे हुये देश में एक नये और अपूर्व जीवन का सञ्चार कर दिया है। इस उसूल का पालन अंग्रेजी क़ौम ने पिछले तीनसौ वर्ष से किया गया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज उसके मुक़ाबले की संसार में कोई दूसरी शक्ति नहीं है।

आज से कुछ सदियों पहिले जिस समय आज का इंगलैण्ड ब्रिटेन के नाम से विख्यात था। इटली के अन्तर्गत रोम देश के साम्राज्य का पश्चिम की ओर दौर दौरा था। उक्त देश का एक वीर सेनापति जिसका नाम जुलियस सीजर था (Julius Ceaser) फ्रांस आदि और देशों को विजय करता हुआ नौका समूह के साथ ब्रिटेन मे पहुंचा और वहां अपना सिक्का जमा लिया। उन दिनों अपनी प्रबल स्वार्थ-साधना के लिये रोम वासियों ने ब्रिटेन लोगों पर रोमाञ्चकारी अत्याचार किये। रोम वासियों की इच्छा साम्राज्य विस्तार की ओर बढ़ती गई और जो सैनिक बल ब्रिटेन में था वह इधर उधर अन्य देश वासियो को दबाने के लिये भेजा जाने लगा! अब क्या था? ब्रिटेन में रोम साम्राज्य की नींव ढीली पड़ गई और लुटेरे लोग बड़ी बड़ी नावों द्वारा ब्रिटेन के किनारे पर धावा करने लगे और रोम वासियोंकी चीजें, सामान, लड़के, लड़कियां और औरतो तक को ले जाने लगे। इन लुटेरों का अत्याचार यहां तक बढ़ा कि उन्हें दबाने के लिये जर्मनी से जूट सेक्सन् और ऐंगिल्स लोग बुलाये गये। इन लोगों ने आक्रमणकारियों से युद्ध कर उन्हे तो दबा दिया पर स्वयं ब्रिटेन मे बस गये और ब्रिटेन लोगों का वध कर उनकी जायदाद और स्त्रियों पर क़ब्जा कर लिया। बचे बचाये ब्रिटेन लोग वेल्स की ओर खदेड़े गये और वे आयर्लैंण्ड में जा बसे। ये विजेता लोग इंगलिश के नाम से प्रसिद्ध हुये और उन्होंने अपने पैर यहां तक फैलाये कि इनके नाम से ब्रिटेन इंगलैंण्ड कहा जाने लगा। ऐलिजावेथ के समय से अंग्रेजों ने बहुत उन्नति की।

संसार में जब कहीं कुछ परिवर्तन एक साथ होता है तो उस विशेष परिवर्तन को क्रान्ति कहते हैं अर्थात् क्रान्ति से ही परिवर्तन का युग आरंभ होता है चाहे वह क्रान्ति धार्मिक हो, सामाजिक,

आर्थिक अथवा राजनैतिक हो। इस सिद्धान्त के अनुसार इंगलैण्ड मे एक नवीन युग का आगमन हुआ। वहां के नवयुवकों मे एक अपूर्व जोश पैदा होगया। जिस कारण वे कलाकौशल की उन्नति करने मे तन मन से जुट गये। नये नये जोशीले और उत्तम से उत्तम लेखक पैदा होगये, जिन्होंने अनेक विषयों पर जीवनप्रद अनेक ग्रन्थ लिखे व साहित्य को सृष्टि की। जिन लोगों ने छोटे छोटे कार्य भी बहादुरी, पुरुषार्थ या पराक्रम से किये थे उनकी जीवनियां लिखना आरंभ कर दिया गया जिनको पढ़ कर और सुन सुन कर आने वाली सन्तति में नवीन भाव प्रवाहित होने लगे और जिसका यह परिणाम हुआ जो आज हम अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस स्थान पर एक दो उदाहरण रूप ऐसी घटनाओ का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा जिसको पढ़ कर हम भारतवासी यह पता लगा सकें कि एक देश में जीवन कैसे पैदा किया जाता है।

एक समय एक अंग्रेजी महिला इंगलैण्ड में समुद्र के किनारे सैर कर रही थी। अकस्मात् उसने देखा कि दूर समुद्र में कोई मनुष्य संकट में पड़ा हुआ है। उसने तुरन्त विचार किया कि मेरा यह कर्त्तव्य है कि इस मनुष्य की रक्षा करूं। वह फौरन कुछ मल्लाहों के पास गई और कहा कि नाव लेकर जाओ और अमुक डूबते हुये आदमी की रक्षा करो। उन्होंने कहा कि आसमान से जाहिर होता है कि तूफ़ान आने वाला है इस लिये हम अपनी नाव खतरे में नहीं डालेंगे। तब वह दूसरे मल्लाह के पास गई और उससे भी संकट ग्रस्त मनुष्य की सहायता करने को कहा। मल्लाह ने उस मनुष्य के पास जाना अपना कर्त्तव्य समझा और अपनी जान पर खेल कर तुरन्त नाव लेकर रवाना हुआ। ज्योंही वह उस डूबते हुये आदमी के पास पहुँचा त्योंही तूफ़ान ने आकर

घेर लिया। परन्तु उसने साहस करके उस डूबते हुये आदमी को नाव में ले लिया और बड़ी दिक्कत के साथ वापिस आया। महिला यह देख कर कि डूबता हुआ आदमी बच गया, बड़ी प्रसन्न हुई पर जब वह डूबता हुआ आदमी उसके सामने लाया गया तो उसे मालूम हुआ कि वह तो उसके प्राणनाथ स्वामी थे। तब तो उसके दुःख और साथ ही साथ हर्ष का ठिकाना न रहा। वह कहने लगी कि अगर आज मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया होता तो अभागिनी बन गई होती। अब पाठकों को विचारना चाहिये कि जब इंगलैण्ड के बच्चे या विद्यार्थी यह घटना पढ़ते होंगे तो उनके हृदय पर यह बात अंकित हुये बिना न रहती होगी कि हर हालत मे मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये अर्थात् प्राणीमात्र की रक्षा करनी चाहिये।

इस प्रकार की जीवन की अनेक शिक्षा प्रद घटनाओं से इंगलैण्ड का इतिहास भरा पड़ा है और उनको वहां के लेखकों ने एक से एक अपूर्व ढंग और सरल भाषा में लिखा है कि जो बच्चे विद्यार्थी और नवयुवक उन्हें पढ़ते हैं उनके हृदयों पर वे जादू के समान असर कर जाते हैं। अगर भारत वर्ष के लेखक अथवा हितैषी यह चाहते हैं कि उनके देश में जीवन पैदा हो तो उनको अपने यहां के पुरुषों, वीरों, विद्वानों, अनुभवी, आत्मत्यागी पुरुष जो वर्तमान समय में या सौ दो सौ वर्ष पूर्व होगये हैं उनकी जीवन घटनाओं को इस प्रकार सरल और अपूर्व ढंग से लिखना चाहिये कि उनका वर्णन आने वाली सन्तानों पर अच्छा प्रभाव डाले।

प्रसन्नता की बात यह है कि हमारे यहाँ के कुछ विद्वानों ने अंग्रेजी भाषा की कुछ किताबों का जैसे स्वावलम्बन (Self Help) कर्त्तव्य (Duty) मितव्ययता (Thrift) चरित्र (Character)

आदि अनेक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। उनका भी असर यहां के विद्यार्थियों के हृदय पर कुछ अच्छा पड़ा है पर साथ ही साथ जब ऐसी पुस्तकों के पढ़ने से उनके हृदय मे प्रश्न उठता है कि क्या हमारे देश में ऐसे पुरुष नहीं हुए ? उनका चित्त कुछ कुन्दसा पड़ जाता है, विशेष कर जब कि इस प्रकार के पुरुष एक नहीं वल्कि अनेक हुए हैं। जैसे भीष्मपितामह, हरिश्चन्द्र, कर्ण, युधिष्ठिर, बुद्धदेव प्रभृति।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे लेखकगण मेरे विचार अथवा भाव को अवश्य समझ गये होंगे और साहित्य के इस हिस्से की कमी को शीघ्र से शीघ्र पूरा करने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

हमको अपनी जाति में जीवन का संचार करने के वास्ते निम्न लिखित बातें आवश्यक है:—

१—हमको अपने देश की भाषा और रहन सहन में गौरव मानना चाहिये।

२—हमको अपने देश के वीर पुरुषों और नेताओं का आदर करना चाहिये और ऐसे उत्सव भी मनाना चाहिये जिनके द्वारा हम अपने पूज्य लोगों की पुण्यस्मृति का आदर कर सकें।

३—हमको अपना इतिहास स्वयं लिखना चाहिये। सत्य का आदर करते हुये इतिहास ऐसा लिखा जावे जिससे कि हमारे बालकों के हृदय में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा हो और उनके श्लाघनीय चरित्र का अनुकरण करने की इच्छा हो। हमको चाहिये कि अच्छे २ पुरुषों के जीवन चरित्र तैयार करावें।

४—हमको अपने नवयुवकों के हृदय मे ऐसे विचार न उत्पन्न होने देने चाहिये जिससे कि वह अपने को और अपनी जाति को दीन हीन समझने लगे और निरुत्साह होकर बैठ रहें।

५—हमको चाहिये कि नवयुवकों को व्यायाम और प्रतिद्वन्द्वता के खेल कूदों में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करें। उनके लिये सब तरह की सामग्री और साधन उपस्थित कर दें। जहां कहीं हमारे युवक गण मैच (Match) वगैरः खेलने जावें वहां हम अपनी उपस्थिति से उनका प्रोत्साहन करावें।

६—हमको चाहिये कि पुस्तकालय और वाचनालय खुलवावें और उनके द्वारा लोगो की ज्ञान वृद्धि मे सहायता दें। सार्व-जनिक व्याख्यान भी कराये जावे और बालकों को वक्तृत्व कला में शिक्षा दी जावे।

७—परस्पर मिलन और सामाजिक जीवन की वृद्धि के लिये प्रीति भोज आदि की योजना की जाय।

८—स्वदेशी प्रदर्शनियां की जावें जिनसे कला आदि को प्रोत्साहन मिले।

राज्यसत्ता और शासन पद्धति

भारतवर्ष मे नवीन-विचार वालों को छोड़ कर साधारणतया हिन्दू जनता राजा प्रजा का जो अर्थ समझती है वह यह है:—राजा विशेष शक्ति शाली और बड़े बड़े व्यापक अधिकारो का स्वामी है। वह स्वतन्त्रता से मनमानी जो चाहे कर सकता है। देश के जल स्थल सब पर उसका अधिकार है और उस की स्वीकृति से प्रजा को अधिकार मिले हैं। प्रजाओं को जल-स्थल जङ्गल आदि वस्तुओ को इस्तेमाल में लाने के एवज में राजा को कर देना पड़ता है। राजा ईश्वर का अंश समझा जाता है। उस के कार्य्य में किसी को हस्तक्षेप करने का हक़ नहीं। हमारे देश मे परिस्थिति बदल जाने पर भी लोगों की मनोवृत्ति वैसी बनी हुई है जिस के कारण हम दासता की बेड़ी पहने हुये चले आते है पर उस को तोड़ने की कोशिश नहीं करते।

इधर के लोग जो कुछ समझने लगे हो, परन्तु प्राचीन काल में राजा प्रजा का सम्बन्ध इतना अन्धकारमय नहीं था। प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि पुराने जमाने मे प्रजा की राय से राजा राज्य करता था।

रामचन्द्र को युवराज बनाने के समय राजा दशरथ ने प्रजा की सम्मति प्राप्त करके ही युवराज बनाया था। इसी प्रकार अनेक उदाहरण हैं जिन से पता चलता है कि महत्त्व के विषयों में राजा प्रजा की राय से काम करता था। ऐसे भी उदाहरण हैं कि दुष्ट राजा को प्रजा दण्ड देकर हटा देती थी। राजा वेणु की कथा बड़ी उपदेश-पूर्ण है। वेणु बड़ा दुराचारी राजा था, प्रजा को बहुत कष्ट देता था। लोगों ने उकता कर उसको मार डाला और राजा पृथु को गद्दी पर बैठाया। आधुनिक युग मे प्रजातंत्र सम्बन्धी विचारों का फ्रान्स में आरम्भ हुआ। फ्रान्स के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो (१७१२-१७७८) ने लोगों के सामने यह विचार रक्खा कि राजा को प्रजा ने चुन कर रक्खा है और जनता को अधिकार है कि वह राजा को हटा सके और देश की शान्ति, रक्षा तथा शासन के लिये किसी योग्य व्यक्ति को चुन ले और जब चाहे उसको हटा दे। जनता का शासन, जनता के हितमे जनता के द्वारा होना चाहिये। देश के प्रत्येक मनुष्य को अपने देश के शासन को अच्छा उन्नतिशील बनाने का अधिकार है। इस विचार के फल-स्वरूप फ्रान्स में प्रजा-सत्ता यानी रिपब्लिक की स्थापना हुई। अब संसार के सभी सभ्य देशों में ऐसी ही राज्य-प्रणाली स्थापित हो गई है। चाहे बाहरी रूप में जो कुछ भेद हो, सभी देशों में यह सिद्धान्त मान्य हो गया है कि जनता के हित के लिये जनता द्वारा जनता का शासन हो। जनता शासन कैसे करे, राज-सत्ता पर उसका नियन्त्रण कैसे बना रहे। इस के लिये आवश्यक है कि राजसत्ता जनता के चुने हुये मनुष्यों द्वारा संचालित हो। राज-सत्ता क्या है, चुनाव कैसे और किस किस तरह होता है, राज-सत्ता पर नियंत्रण कैसे रक्खा जाता है। इन बातों का जान लेना आज कल

प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है। नीचे राज-सत्ता अथवा विधान के विषय में संक्षेप मे कुछ परिभाषाएं दी जाती हैं:—

राजसत्ता—(State) राज-सत्ता उस संस्था या संस्था समूह को कहते हैं, जो जीवन के कुछ सामान्य मौलिक लक्ष्यों और परिस्थियों की उपलब्धि के उद्देश्य से किसो निश्चित भूभाग के निवासियों को एक अधिकार के अधीन एकत्रित करता है। प्रेसिडेण्ट विल्सन की परिभाषा के अनुसार दण्डनीति के उद्देश्य से किसी निश्चित प्रदेश की संगठित जन-सत्ता को राज-सत्ता कहते हैं।

शासन पद्धति – (Constitution) उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विविध प्रणालियां संसार में प्रचलित हैं, जो शासन पद्धति के नाम से विख्यात हैं। राजनैतिक समाज के ढांचे को शासन पद्धति कहते हैं, दूसरे शब्दो मे शासन पद्धति उन सिद्धान्तो के समुच्चय को कहते है जिनके अनुसार शासन के अधिकारो, शासितों के स्वत्वो और इन दोनों वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियन्त्रण होता है। जिस प्रकार मानव शरीर की बनावट ऐसी है कि उसके अवयव स्वास्थ्य की अवस्था मे सुचारु रूप से आपस में मिलकर काम करते हैं, पर रुग्णावस्था में इसके विपरीत चलते हैं, इसी प्रकार जब किसी राजा अर्थात् राजनैतिक समाज के विभिन्न अवयव और उनके कार्य्य-क्षेत्र तथा उनके परस्पर सम्बन्ध सुनिश्चित होते हैं और किसी व्यक्ति या व्यक्तिवर्ग की इच्छा पर निर्भर नहीं रहते, उस अवस्था में यह कह सकते हैं कि उस राज्य या राजनैतिक समाज में निश्चित शासन पद्धति है।

प्रभुत्व—(Sovereignty) प्रत्येक शासन पद्धति में यह आवश्यक होता है कि उसकी रक्षा के लिये एक ऐसी शक्ति हो, जो उसको पथ-भ्रष्ट होने से रोके। किसी राज्य के अधिकार क्षेत्र के भीतर रहने वाले सब निवासियों या जन-समितियों के ऊपर किसी व्यक्ति या व्यक्ति वृन्द के आधिपत्य को प्रभुत्व कहते हैं।

सरकार—(Government) राज के शासन-यन्त्र को सरकार कहते हैं जिस के प्रभुत्वाधिकार से काम लेने का स्वत्व प्राप्त है। दूसरे शब्दों में राज्य के भीतर शान्ति रखना और बाहर से उसकी रक्षा करना सरकार का काम है। इसलिये उसके हाथ मे सैनिक शक्ति होनी चाहिये और विधायक अर्थात् विधान रचना (क़ानून बनाने की शक्ति) की शक्ति होनी चाहिये, इसके अतिरिक्त उसके पास यह शक्ति भी होनी चाहिये कि राज की रक्षा और विधानों को काम मे लाने के लिये जितने रुपये की आवश्यकता हो, वह जनता से वसूल कर लेवे। सरकार के लिए यह बात भी बड़ी आवश्यक है कि वह शासन पद्धति के सिद्धान्तो का ठीक निर्णय करवा सके। संक्षेपतः उसके हाथ में विधायक शासक और न्याय की सामर्थ्य होनी चाहिये। अरस्तु (Aristotle) द्वारा किये गये विभाग के अनुसार सरकार के तीन रूप हैं। इन रूपो का अच्छा और भ्रष्ट स्वरूप दोनों ही हो सकता है।

विधान का नमूना।	सच्चा स्वरूप।	भ्रष्ट स्वरूप।
१—एक का राज्य (Monarchy)	राजतन्त्र या एकछत्र	अत्याचारी शासन
२—थोड़े लोगो का राज्य (Oligarchy)	उच्च वर्गों का राज्य	अमीरों का राज्य
३—बहुतों का राज्य (Republic)	लोक तन्त्र	स्वेच्छाचार

वर्तमान समय के राज्य में प्रायः दो बड़े २ भाग किये जा सकते हैं एकात्मक (Unitary) और संघात्मक (Federal) एकात्मक शासन एक सरकार के आधीन संगठित होता है यानी केन्द्रीय सरकार के द्वारा शासित सम्पूर्ण प्रदेश के भिन्न २ प्रान्तो को जो अधिकार प्राप्त होते हैं वे उस सरकार की मर्जी से मिलते हैं। समस्त प्रदेश पर केन्द्रीय शक्ति का आधिपत्य होता है। राज्य द्वारा उसके किसी प्रान्त को ऐसा विशेष अधिकार नहीं दिया जा सकता जो केन्द्रीय सरकार के आधिपत्य को नियन्त्रित करे।

संघ शासनः— संघात्मक शासन वह शासन है जिसमे कई अलग २ रियासतें किसी व्यापक उद्देश्य के लिये एक होती हैं। दूसरे शब्दों में संघात्मक राज्य एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था है जिसके द्वारा रियासतों के अधिकारो को अक्षुण्ण रखते हुये राष्ट्रीय एकता का सामंजस्य स्थापित्त होता है। संघात्मक शासन एक तरह की सन्धि सी होती है। यह कुछ ऐसे समाजो का आपसी प्रबन्ध है जो अपने कुछ अधिकारो को अपने ही पास रखता है, इस प्रकार पूर्ण रूप से विकसित होने पर संघ की तीन विशेषतायें स्पष्टरूप से प्रगट होती हैं। एक विधान का प्राधान्य यानी अन्तिम शक्ति वह लेख पत्र है, जिसके आधार पर सघ की स्थापना की गई है। दूसरा संघ सरकार और उससे सहयोग करने वाली रियासतों के अधिकारो का बटवारा, और तीसरे इन रियासतों के रऊप एक ऐसी शक्ति जो संघ सरकार और रियासतो के आपस में कोई झगड़ा पैदा होने पर तै करे।

अमेरिका का संयुक्त राज्य, स्विटजरलैंड, आष्ट्रेलिया, जर्मनी और कनाडा इसके उदाहरण हैं।

शासन-विधान दो प्रकार के होते हैं, १-परिवर्त्तनीय (Flexible) २-अपरिवर्त्तनीय (Rigid)

परिवर्तनीयः—जो शासन विधान विना किसी विशेष यंत्र योजना के संशोधित या परिवर्तित हो सकता है वह परिवर्तनीय है। दूसरे शव्दो में परिवर्तनीय शासन विधान वह है जिसका अधिकांश भाग लिपि वद्ध है लेकिन कुछ भाग रिवाजों पर अवलम्वित है। ग्रेट-ब्रिटेन और इटली परिवर्तनीय शासन विधान के उदाहरण हैं।

अपरिवर्तनीयः— जिस शासन विधान को वदलने के लिये या जिसमें संशोधन करने के लिये हमें विशेष विधि से काम लेना पड़ता है, वह अपरिवर्त्तनीय है। दूसरे शव्दो मे अपरिवर्तनीय शासन बिधान पूर्णतया लिपि वद्ध शासन विधान होता है। संक्षेप मे जो शासन विधान विना भंग किये हुये परिवर्तित नहीं किया जा सकता वह अपरिवर्तनीय है। फ्रांस, अमेरिका का संयुक्त राज्य अपरिवर्तनीय शासन विधान के उदाहरण हैं।

मताधिकार (Sufferage)— आधुनिक संसार के राज्यों में विशेषतः संचालक, कानून के विधायक जनता द्वारा चुने हुये होते हैं। अतः इस चुनाव की प्रणालियों और नियमों का जानना आवश्यक है। चुनाव प्रणाली के संवन्ध में शासन विधान के दो रूप हैं।

एक वह जिसमें प्रत्येक पुरुप को वोट देने का अधिकार होता है।

दूसरा वह जिसमें हर एक वालिग़ को वोट देने का अधिकार होता है।

पुरुष मात्र के मताधिकार के अर्थ यह हैं कि एक निश्चित उम्र के ऊपर हर एक पुरुष को वोट देने का अधिकार होता है। केवल वही पुरुष चुनाव के अधिकार से वंचित होता है जो भिखारी अपराधी या पागल हो। बालिगों के मताधिकार का अर्थ यह है कि स्त्री पुरुष दोनो को बालिग होने पर वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

चुनाव मंडल (Constituency)—चुनाव प्रणाली की दृष्टि से चुनाव क्षेत्र में लक्षणों के आधार पर भी वर्तमान शासन विधानो मे भेद किया जाता है। जिस चुनाव क्षेत्र से एक या अधिक से अधिक दो मेम्बर चुने जाते हैं वह एक सदस्य चुनाव मंडल कहा जाता है जिस चुनाव क्षेत्र से कई मेम्बर चुने जाते है, वह अनेक या बहुत सदस्य वाला मंडल कहा जाता है। कुछ देशों मे निम्न व्यवस्थापिका सभा के लिये एक सदस्य चुनाव मंडल वाली प्रणाली से होता है और ऊपर वाली सभा के लिये बहु-सदस्य वाली प्रणाली से होता है।

द्वितीय या ऊर्द्धव सभाः—अधिकतर देशों में दो सभायें या चैम्बर (Chamber) होती हैं, निम्न सभा हमेशा जनता मे से चुने हुये प्रतिनिधियो की सभा होती है। द्वितीय या उर्द्धव सभा में कहीं २ मेम्बरों का चुनाव नहीं होता, वे नामजद किये जाते हैं। स्पेन, जापान, दक्षिण अफ्रिका की युनियन, मिश्र की नंई रियासत मे द्वितीय या उर्द्धव सभा के कुछ सदस्य चुने जाते हैं और कुछ नहीं। संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, आष्ट्रेलिया, आयरिश फ्री स्टेट, स्विजरलैंड की कौंसिल आफ स्टेट चुने हुये ऊर्द्धव सभाओं का उदाहरण हैं। ग्रेट ब्रिटेन का हाउस आफ़ लार्ड्स (House of Lords) इटेली और कनाडा के सिनेट के मेम्बर नहीं चुने जाते।

कार्य कारिणी (Executive) का रूपः— किसी देश में पार्ल्यामेंट की प्रथा हो या न हो, कार्य-कारिणी सदैव किसी न किसी के सामने उत्तरदायी होती है। वर्तमान अवस्था मे यह प्रायः जनता के सामने उत्तरदायी होती है। यहां सवाल यह है कि उत्तरदायित्व किस पर होता है ? इस प्रश्न के उत्तर के आधार पर शासन पद्धतियों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं क्योंकि वास्तव में कार्य-कारिणी या तो पार्लामेंट (व्यवस्थापिका सभा) के सामने उत्तरदायी होती है या उससे अधिक व्यापक शक्ति के। अगर पार्ल्यामेंट का उस पर विश्वास न रहे तो वह उसे अलग कर सकती है या कार्य-कारिणी पर कोई सुदूर रोक होती है। जैसे कुछ साल बाद प्रेसिडेन्ट का चुनाव। अगर वह फौरन पार्लामेन्ट के सामने उत्तरदायी हो तो वह पार्ल्यामेन्टरी कार्य-कारिणी कहलाती है, लेकिन अगर उसे पार्ल्यामेन्ट अलग नहीं कर सकती और निश्चित समय पर पार्ल्यामेन्ट से अधिक व्यापक शक्ति के सामने ही जवाबदेह हो तो वह नियत या गैर-पार्लामेन्टरी कार्यकारिणी कहलाती है।

महायुद्ध में या उसके बाद निम्न लिखित देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई:—

१—दक्षिणी अफ्रीका २—न्यूजीलैण्ड ३—आस्ट्रेलिया ४—कनेडा ५—पोलैण्ड ६—जीकोस्लेविकिया ७—जोकोस्लेविया ८—लीथूनिया ९—स्थूनिया १०—लीटीविया।

मताधिकार के भेद

१—जन साधारणमत (Plebiscite) २—जन-सम्मति (Referendum) ३—वापिस बुलाने का अधिकार (Recall) ४—नियामक जन-सम्मति (Popular initiative)

जन साधारण मत— मत संग्रह का वह ढंग है जो किसी अवसर पर किसी ऐसे शासन को कायम करने को ली जाती है जिस की हूकूमत मानना लोगो के लिये लाज़िमी हो।

जन-सम्मति— मत संग्रह का वह ढंग है जिसके द्वारा वोटरों को अधिकार होता है कि व्यवस्थापिका सभा के द्वारा कानून बनाये जाने के पहले उस पर अपनी राय क़ायम कर लें। आधुनिक संसार में महत्त्व पूर्ण प्रश्नों पर निश्चय करने के समय राष्ट्रीय सरकार इस प्रकार लोकमत जान लेती है। बड़े २ देशो में इस का उपयोग बहुत कठिनता और बड़े खर्च से हो सकता है; इस लिये विरले ही समय पर इसका उपयोग होता है परन्तु स्विट्जरलैण्ड जैसे छोटे देशो मे इसका उपयोग प्रायः हुआ करता है क्योंकि छोटेही देशो में जन साधारण की रुचि सहज में जानी जा सकती है।

३— **नियामक जन सम्मति**—लोक प्रवर्तन से अर्थात् वोटरों को ऐसा अधिकार है कि वे किसी कानून को बनवाने के उद्देश्य से वे अपनी प्रतिनिधि सभाओं में स्वतः प्रस्तावित करा सकते हैं।

४ **रिकालः**— अर्थात् वापस बुला लेने के अधिकार। इस रीति के अनुसार वोटरों को अधिकार है कि वे अपने चुने हुये प्रतिनिधियो को यदि वे उनकी राय के अनुसार न काम करते हों तो मियाद के पहले ही वापस बुला ले।

निम्नलिखित देशों अथवा रियासतों में निम्न प्रकार राज्य सभा अथवा विधान है। जो पाठकों के ज्ञान के लिये दिया जाता है।

१	२	३	४	५	६
एकात्मक राज	शासन पद्धति	वोटाधिकार	चुनाव मंडल	द्वितीय सभा	कार्य-कारिणी
१—ग्रेट ब्रिटेन	परिवर्तनीय	वालिग मताधिकार	एक-सदस्य	अनिर्वाचित	पार्ल्यामेंटरी
२—इटैली	"	पुरुष मताधिकार	बहु-सदस्य	"	"
३—न्यूज़ीलैण्ड	"	वालिग मताधिकार	"	"	"
४—फिनलैण्ड	"	"	"	एक सभा	"
५—स्पेन	अपरिवर्तनीय	पुरुष मताधिकार	एक-सदस्य	निर्वाचित	"
६—पुर्तगाल	"	"	"	"	"
७—ग्रीस	"	"	"	"	"
८—चिली	"	"	"	"	"
९—बलगेरिया	"	"	"	"	"
१०—टर्की	"	"	"	"	"
११—जापान	"	"	"	अनिर्वाचित	"
१२—फ्रांस	"	"	"	निर्वाचित	"
१३—बेलजियम	"	"	"	"	
१४—युगोस्लेविया	"	"	"	एक सभा	"
१५—डेनमार्क	"	वालिग मताधिकार	"	निर्वाचित	"
१६—हंग्री	"	"	"	अनिर्वाचित	"
१७—आयरिश फ्री	"	"	"	निर्वाचित	"
१८—पोलैण्ड	"	"	"	"	"
१९—जैकोस्लेविया	"	"	"	"	"

२०—नार्वे	अपरिवर्त-नीय	वालिग मता-धिकार	एक-सदस्य	निर्वाचित	पार्ल्या-मेंटरी
२१—नीदरलैण्ड					
२२ रुमानियां	"	"	"	"	"
२३—स्वीडेन	"	"	"	"	"
२४—फ्री सिटी	"	"	"	"	"
आफ स्टेट आफ़ डेंजिग	"	"	"	"	"
२५—लिथूनियां	"	"	"	एक सभा	"
२६—इस्टूनियां	"	"	"	"	"
२७—लटविया	"	"	"	"	"

संघात्म राज्य	शासन-पद्धति	वोटाधिकार	द्वितीय सभा	कार्य-कारिणी
१—संयुक्त राज्य अमेरिका	अपरिवर्तनीय	वालिग वोटा-धिकार	निर्वाचित	पार्लिया-मेंटरी
२—आस्ट्रेलिया	"	"	"	"
३—कनाडा	"	"	"	"
४—आस्ट्रिया	"	"	"	"
५—जर्मनी	"	"	अनिर्वाचित	"
६—ब्राजील	"	पुरुष वोटाधिकार	निर्वाचित	नानपार्ल्या
७—स्विटजरलैण्ड	"	"	अनिर्वाचित	"
८—अर्जेंटाइना का संघात्म राज्य	"	वालिग वोटा-धिकार	निर्वाचित	"
९—मेक्सिको	"	"	"	"
१०—दक्षिणी अफ्रीका	"	"	"	पार्लियामे०

संयुक्त-राज्य अमेरिका का शासन विधान

करीब १५० वर्ष हुये अमेरिका भी एक गुलाम मुल्क था जैसा कि भारतवर्ष है। पर वहां के वाशिन्दे अपनी दासता और अपमान जनक अवस्था पर विचार करने लगे और निश्चय पर पहुँचे कि उनके देश पर विदेशियों को शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होने १७७१ में स्वतन्त्रता का युद्ध आरम्भ कर दिया। यद्यपि ये लोग युद्ध करने में उतने प्रवीण नहीं थे, तथापि, चूंकि इनके दिल में आजादी की लगन थी उन्होंने जी खोल कर सात वर्ष तक लगातार युद्ध किया; यहां तक कि १७७८ ई० तक पूर्ण आजादी प्राप्त करली। इस युद्ध के अगुआ मिस्टर वाशिंगटन थे, उनके नेतृत्व में स्वतन्त्रता का यह युद्ध जीता गया।

अमेरिका एक बहुत बड़ा देश है जो कोई मुखतलिफ छोटी छोटी रियासतों में बटा हुआ है। तमाम रियासतो के प्रतिनिधि सन् १७८१ मे मिले और देश के प्रबन्ध के वास्ते एक कांग्रेस स्थापित की जिसके पहले सभापति मिस्टर वाशिंगटन बनाये गये।

वर्त्तमान समय में अमेरिका राज्य का संगठन जैसा मजबूत है वैसा प्रायः कम देखने में आता है। वहां पर छोटी बड़ी ४८ रियासतें हैं। हर बालिग स्त्री पुरुष वोट दे सकते हैं। बशर्ते कि

व कंगाल, दिवालिये या पागल न हों। वहां पर सब से बड़ी संस्था कांग्रेस है जिसमें तमाम अमेरिका के प्रतिनिधि होते हैं। यह दो भागों में विभाजित हैं, एक प्रतिनिधि सभा (House of Rep-resentatives) दूसरी सीनेट है। हर रियासत से जन संख्या के अनुसार प्रतिनिधि आते हैं। प्रत्येक रियासत दो सीनेट के मेम्बर भेजती है। सभापति का चुनाव ४ वर्ष के वास्ते, सीनेट का ६ वर्ष के वास्ते और प्रतिनिधियो का २ वर्ष के वास्ते होता है। सीनेट के $\frac{1}{3}$ सदस्य हर दूसरे वर्ष बदला करते हैं।

अमेरिका की कांग्रेस का संगठन बहुत दृढ़ और उत्तम है। यह देश भी राज सत्ता की केन्द्रीय शक्ति है जो कांग्रेस के व केन्द्रीय शक्ति के क़ायदे कानून है वे सब लिखे हुये हैं। उनके अलावा जो तमाम बेलिखी बातें हैं उनके सम्बन्ध में प्रत्येक रियासत जो चाहे सो करे। रियासतो को अपने भीतरी मामलों के प्रबन्ध के लिये पूर्ण आज़ादी है। लड़ाई करना सुलह करना, फौज रखना आदि व्यापक बाते कांग्रेस के सभापति के आधीन होती हैं। वह सभापति प्रधान सेनापति भी होता है।

सीनेट के वास्ते वही उम्मेदवार हो सकता है जो पिछले ९ वर्षों से अमेरिका का वाशिन्दा हो और रियासत से खड़ा हो उस रियासत का वाशिन्दा हो। सीनेट की ताक़त बहुत बड़ी होती है। सीनेट सभापति को अनुचित कार्य करने से रोक सकता है। सीनेट ही परराष्ट्र सम्बन्धी मामलो को या किसी प्रकार की सन्धि कर सकता है। उदाहरण के तौर पर प्रेसीडेन्ट विल्सन ने अमेरिका की ओर से (League of Nations) राष्ट्र संघ के मसौदे पर हस्ताक्षर किये थे परन्तु सीनेट ने इसे बिल्कुल रद्द कर

दिया। १६२२ के चुनाव में मिस्टर हूवर और गवर्नर स्मिथ का मुकाबिला सभापति पद के वास्ते हुआ था उसमे निम्न प्रकार वोट आईं थीं:—

हूवर	गवर्नर स्मिथ
सेन्ट्रेल वोट ४४४ (४०)	एलेक्ट्रेल वोट ८७ (८)
लोगो के वोट २ करोड़ १० लाख	लोगो के वोट १ करोड़ ६०लाख

इसलिये प्रेसीडेन्ट हूवर चुने गये।

राष्ट्र--संघ

समय २ पर महानशक्तियों द्वारा इस बात का प्रयत्न होता आया है कि उनमे आपस में संगठन हो जाय और खून खराबी न हो। पर यह कार्य कभी सफलता को प्राप्त नहीं हुआ और परिणाम यह हुआ कि यूरोप में महायुद्ध छिड़गया, जो चार वर्ष लगातार चलता रहा। इस युद्ध में करोड़ों आदमी मारे गये और खरबो रुपये बरबाद हुये। युद्ध समाप्त होने पर कुछ शक्तियो के दिमाग़ मे यह बात फिर आई कि तमाम ताकतों का संगठन होजाय जिससे कि भविष्य में फिर इस प्रकार की लड़ाई न हो सके। प्रेसिडेन्ट विलसन द्वारा इस योजना को कार्य रूप मे परिणित करने का प्रयत्न किया गया। उसके अनुसार सन् १९२१ ई० में वारसलीज़ (Treaty of Versailes) में लीग आफ नेशन्स का संगठन हुआ। उस समय इस संस्था में बत्तीस ताक़तें शामिल हुईं। सन् १९२६ में जर्मनी भी शामिल कर ली गई, और अब तक लगभग सभी ताक़तें शामिल हो चुकीं थीं जो क़रीब ७५ फी सदी आबादी और ६५ फी सदी दुनियां की जमीन शामिल करती हैं। लीग आफ नेशन्स के निम्न लिखित उद्देश है।

१—आपस में तमाम अन्तर्राष्ट्रिय विषयों मे साम्य रखना

२—अगर किसी दो राष्ट्रों में झगड़ा पड़ जाय तो उसे कानून द्वारा तै करा देना।

अगर क़ानून न लागू हो तो निर्पेक्ष भाव से दोनों की जांच करते हुये आपस में समझौता करा देना !

३—कोई ताक़त बड़ी हो या छोटी वग़ैर लीग की इजाजत के लड़ाई नहीं छेड़ेगी !

अगर कोई ताक़त वग़ैर लीग की आज्ञा के लड़ाई छेड़ेगी तो बाक़ी तमाम ताकतें उसका हर प्रकार का बाईकाट करेंगी और जरूरत होगी तो तमाम ताकतें उसके खिलाफ युद्ध भी छेड़ सकेंगीं इस लीग का संघटन निम्न प्रकार है।

१—एक ऐसेम्बली

२—एक कौन्सिल

३—एक सेक्रेटेरियट

४—अन्तराष्ट्रीय न्याय के लिये एक स्थायी न्याय विभाग होगा। (Permanant court of International Justice) ऐसेम्बली में हर ताक़त की ओर से तीन मेम्बर तक हो सकेंगे पर वोट सिर्फ एक ही मेम्बर दे सकेगा। ऐसेम्बली की बैठक साल में एक बार अवश्य हुआ करेगी और जिस स्थान पर लीग चाहेगी वहां हुआ करेगी। पर अब तक जितनी बैठकें हुई हैं वह जिनोवा मे हुई हैं। सितम्बर मास के पहले सोमवार से शुरू हुआ करेगी और करीब तीन हफ्ते तक चला करेगी।

(२) कौसिल में निम्न लिखित मेम्बर होंगे।

१—पांच स्थाई सभासद् होंगे। ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, जापान और जर्मनी (शुरू मे संयुक्त राज्य अमेरिका के वास्ते एक सीट थी पर जब अमेरिका शामिल नहीं हुआ तब वह पाँचवी सीट जर्मनी को दे दी गई।)

२—छोटी ताक़तो के नौ प्रतिनिधि एसेम्बली द्वारा चुने जाते हैं। उसका चुनाव सिर्फ तीन वर्ष के लिये होता है।

(३) इसकी बैठक साल मे चार बार हुआ करेगी मार्च, जून सितम्बर और दिसम्बर में।

कौंसिलें Upper Ho। s3 के समान रहेगी।

कौंसिल और ऐसेम्बली में क़रीब करीब वही सम्बन्ध है, जो पार्ल्यामेन्ट और केबिनेट में। यहां पर केबिनेट की कौंसिल को कुछ ज्यादा अधिकार हैं। कौंसिल की बैठक जनेवा के अलावा अन्य स्थानो मे भी हुआ करती है।

सेक्रेटेरियटः—कौंसिल कार्यालय का एक जनरल स्थायी सेक्रेटरी मुकर्रर किया जाता है जो और सेक्रेटरियो को कौंसिल की मंजूरी से मुकर्रर करता है। लीग आफ नेशनस् का स्थायी दफ़्तर जनेवा में रहता है।

स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सम्बन्ध मे यह तै किया गया है कि इसमे ग्यारह (११) न्यायाधीश होंगे। पांच लैटिन ग्रूप (Latin Group of States) तीन जर्मनी और स्कौण्डिनेवियन ग्रूप (Germany & Scandanabian) दो कामन ला ग्रूप (Commonlaw group) और एक एशिया का। जो झगड़े इनके पास आया करेंगे, उनका यह निबटारा करेंगे। जो कोर्ट सिर्फ इन्साफ के वास्ते होंगे, वे आपस मे सुलह करा सकेंगे। अगर यथार्थ में देखा जाय तो लीग आफ नेशन्स दुनियां में युद्ध रोकने के लिये शान्ति-मदिर के समान है। यह दूसरी बात है कि बड़ी २ ताकतें इसके आड़ में फायदा उठावें। अगर ताकते अपने स्वार्थ छोड़ कर इसमें कार्य करें तो हर प्रकार की संसार मे शान्ति स्थापित हो सकती है।

भारत और चुनाव

प्राचीन समय में राज्य की पद्धति प्रायः राजतन्त्रात्मक थी (प्रजासत्तात्मक राज्य कम थे), पर जब से राजाओं और बादशाहो ने अपनी सत्ता का दुरुपयोग करना आरंभ कर दिया तब से राजाओ और बादशाहों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठने लगी। वर्तमान समय में बादशाहत की प्रथा अनक़रीब उठ सी गई है और यदि कहीं है तो केवल नाम मात्र के लिये। आज समस्त संसार में प्रजातन्त्र का दौरदौरा हो रहा है अर्थात् राज्य की सत्ता प्रजा के हाथो मे आगई है। वर्तमान समय में संसार में प्रायः दो प्रकार का राज्यविधान है-पहिला एकराजात्मक जिसको युनिटरी स्टेट (Unitary State) कहते हैं, दूसरा संघात्मक जिसको फेडरल स्टेट (Federal State) कहते हैं।

यूनिटरी विधान उस राज्य पद्धति को कहते हैं जहाँ स्वामित्व केन्द्रीय संस्था का होता है अर्थात् प्रजा द्वारा चुनी हुई केन्द्रीय पञ्चायत के जरिये राज्यकार्य किया जाता हो जैसे यूनाइटेड किङ्गडम (United Kingdom) फ्रांस इटली आदि। फेडरल विधान उस राज्य पद्धति को कहते हैं जहाँ कई बराबर की ताक़त मिलकर एक वृहत ताक़त अर्थात् राज्य बनाती हों। इन तमाम

ताकतों द्वारा चुनी हुई पञ्चायत को कुछ व्यापक अधिकार दे दिये जाते हैं लेकिन प्रथक् २ प्रदेश के आन्तरिक सब अधिकार प्रत्येक रियासत अपने हाथ में रखती है जैसे अमेरिका (United states of America) स्वीटजरलैंड, जर्मनी और कैनेडा इत्यादि।

वर्तमान समय मे समस्त संसार में स्थानीय और अन्य राज्य कार्य चुने हुये आदमियों के द्वारा किये जाते हैं। इसी के अनुसार यहाँ भारतवर्ष मे भी चुनाव का सिलसिला चुँगी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कौन्सिल, एसेम्बली और कौन्सिल आफ स्टेट मे शुरू होगया है। जो देश स्वतन्त्र होते हैं उनको चुँगी, कौन्सिल, एसेम्बली आदि में पूर्ण अधिकार होते है पर जो परतन्त्र होते हैं उनको नाम मात्र के अधिकार होते हैं। जैसे भारतवर्ष में चुँगी अथवा कौन्सिल अगर कोई प्रस्ताव गवर्नमेण्ट की इच्छा विरुद्ध करती है तो वह प्रस्ताव गवर्नर जेनरल या गवर्नर द्वारा रद्द कर दिया जाता है। इसी प्रकार अगर कोई प्रस्ताव एसेम्बली और कौन्सिल आफ स्टेट में होता है तो वायसराय अपनी ताक़त से उसे रद्द कर सकता है। यद्यपि किसी हद तक चुँगी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आजाद है पर तब भी समय तथापि सरकार द्वारा इसके कार्य में हस्तक्षेप किया जाता है।

संसार में तमाम देशो में जहाँ चुनाव द्वारा स्थानीय और केन्द्रीय राज्य कार्य चलता है वहाँ का प्रबन्ध वोटरों अर्थात् मत दाताओं पर निर्भर रहता है। अगर वोटरों द्वारा योग्य, तजुर्बेकार सच्चे और न्यायी मेम्बर पहुंचते हैं तो स्थानीय और देश का राज्य कार्य ठीक होता है अन्यथा देश को और जनता को नाना प्रकार की रुकावटों, दिक्कतों और कुप्रबन्ध का मुक़ाबिला करना पड़ता है। इस कारण अगर किसी देशके वाशिन्दे सुप्रबन्ध, अमन तथा उन्नति

चाहते हैं, तो उनको योग्य से योग्य आत्मत्यागी मेम्बर भेजने चाहिये।

यहाँ पर भारतवर्ष में चुनाव सम्बन्धी कुछ बातें निवेदन करना अनुपयुक्त न होगा।

सन् १८७५ के क़रीब भारत सरकार ने चुँगी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड नाम की संस्थाएं स्थापित कीं। ज़िला मैजिस्ट्रेट शहर व ज़िले के कुछ मुख्य मुख्य आदमियों को इन संस्थाओं में काम करने के वास्ते मुक़र्रर कर दिया करता था और आप खुद चैयरमैन हुआ करता था। इन संस्थाओं के द्वारा, सफाई, रोशनी, सड़कों और पानी आदि का प्रबन्ध होता था। जब लोगों में मेम्बर होने की इच्छा होने लगी और कुछ समय व्यतीत हुआ तो मतदाताओं की सूची तैयार की गई। उम्मेदवारो को पर्चे बाँट दिये जाते थे, जो ज़्यादा पर्चे वोटरों से भरवा लाते थे वे मेम्बर चुन दिये जाते थे। इस प्रकार कुछ वर्ष तक चुनाव चलता रहा। इस पर लोगों को शिकायत हुई कि उम्मेदवार लोग वोटरों पर नाजायज़ दबाव डालते हैं। इस कारण वोटरो को स्वतन्त्र राय देने का मौक़ा देना चाहिये। इसके अनुसार एक दिन, समय और स्थान पर वोट पड़ने का तरीक़ा जारी होगया। अब तक चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ही हुआ करता था।

यहाँ यह बता देना ज़रूरी मालूम पड़ता है कि आरंभ में सम्मिलित चुनाव हुआ करता था अर्थात् हिन्दू मुसलमान वोटर दोनो हिन्दू या मुसलमान उम्मेदवारों को वोट दिया करते थे; पर सन् १९११ के चुँगी ऐक्ट के अनुसार प्रथक् निर्वाचन निश्चित हुआ अर्थात् हिन्दू वोटर हिन्दू उम्मेदवारों को और मुसलमान वोटर मुसलमान उम्मेदवारों को वोट देने लगे और

इसके अलावा डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के बजाय मेम्बरों में से (Non-official) ग़ैर सरकारी चेयरमैन चुना जाने लगा। यहां पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि जब सम्मिलित चुनाव होता था उस समय हर हिन्दू और मुसलमान उम्मेदवार को हिन्दू मुसलमान बोटरो से बोट लेने के ख्याल से उन्हें खुश रखना पड़ता था और कोई कार्य्य ऐसा नहीं होने पाता था जिससे हिन्दू और मुसलमान बोटरों का दिल दुःखे। इसी का यह परिणाम था कि भारत के इतिहास में सन् १६१६ के पहले कभी हिन्दू मुस्लिम झगड़े नजर नहीं आते थे। भूले भटके अगर कहीं हिन्दू मुस्लिम झगड़े हो भी जाते थे तो फ़ौरन शान्त होजाया करते थे। कारण कि मेम्बरी के उम्मेदवार लोग जनता की सुर्खरूई लूटने के लिये उत्सुक रहते थे। पर जबसे प्रथक् निर्वाचन होना शुरू होगया उस समय से आये दिन हिन्दू मुसलमानो के झगड़े देखने या सुनने में आया करते हैं; क्योंकि अब न तो हिन्दू उम्मेदवारों को मुसलमान बोटरों से बोट लेने की जरूरत है और न मुसलमान उम्मेदवारों को हिन्दुओ से। इसके अतिरिक्त हिन्दू हिन्दू बोटरों से और मुसलमान मुसलमान बोटरो से जाति व धर्म का जोश दिला कर बोट लेने की आशा किया करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि आये दिन झगड़े नजर आया करते हैं जो देश की उन्नति के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। इस लिये अखिल भारत-वर्षीय महासभा और नेशनल मुस्लिम पार्टी इस बात के पूर्ण उद्योग में है कि भविष्य में चुँगी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कौन्सिल, एसेम्बली आदिका सम्मिलित चुनाव हुआ करै। पर नौकरशाही और उसके पिट्ठू हिन्दू और मुसलमान क्यों मानने लगे; क्योकि अधिकारियों का तो इसी में फायदा है कि शासित जन आपस में लड़ते रहें।

सिद्धान्त या उसूल इस ख़्याल से शुरू किये जाते हैं कि लोगो को सुभीता हो और न्याय मिले, पर स्वार्थी और मक्कार लोग अपना मतलब हल करने के विचार से न मालूम उसी कार्य में क्या क्या जाल या फ़रेब रचते हैं कि वो लोगो को लोभ और धोके में डाल देते हैं।

वर्तमान चुनाव का तरीक़ा इस ख़्याल से जारी किया गया है कि हर वोटर अपनी स्वतन्त्र राय दे सके, और अच्छे से अच्छे मनुष्य को मेम्बर बनाकर भेज सके, जिनके द्वारा जनता का हित हो सके।

शुरू में तो चुनाव क़रीब क़रीब ठीक हुए। उस समय उम्मेदवार वोटरों से अपनी भलमनसाहत मेल, रसूख़, सरकार में अपनी पहुंच के बल पर अथवा पड़ौसी की हैसियत से वोट मांगने लगे और इसके अनुसार उम्मेदवार चुने जाने लगे। इस प्रकार के चुङ्गी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव मे, लिस्ट, सवारी, पान, पानी आदि के ख़र्च में पचास रुपये से लेकर डेढ़सौ रुपये तक, जितना बड़ा वार्ड होता था उसके अनुसार, ख़र्च पड़ जाया करता था और कौन्सिल या असेम्बली के चुनाव में पांच सौ से पन्द्रह सौ तक ख़र्च पड़ जाया करते थे। शुरू में लोग नामवरी या कुछ कार्य करने के ख़्याल से मेम्बर बनने की इच्छा रखते थे। पर ज्यों ज्यों समय निकलता गया त्यों त्यों कुछ स्वार्थी लोग नाजायज फ़ायदा उठाने लगे। तब उन्होंने देखा कि अगर मेम्बर होने में कुछ ज्यादा रुपया भी ख़र्च पड़ जाय तो कोई हर्ज की बात नहीं क्योंकि अगले तीन वर्ष में जितना ख़र्च होगा उससे कहीं ज्यादा वसूल कर लेंगे। उन्होंने बस्ती के कुछ चलते हुये आदमियों को कुछ रुपया देना शुरू किया कि वह कोशिश करें और वोट

दिखावे। इस क़िस्म का ढर्रा कुछ समय तक चलता रहा पर बाद में जब वोटरों ने देखा कि यह कोशिश कुनन्दा मुफ्त में रुपया खाते हैं तो उन्होंने भी इच्छा प्रकट की कि जब हम अपना काम हर्ज करके वोट देने जाते हैं तो उसका हर्जाना मिलना चाहिये। इसके अनुसार मेम्बरी के भूखे धनी और स्वार्थी उम्मेदवारो ने ऐसे वोटरो को रुपया तक़सीम करना शुरू कर दिया। जब और वोटरों ने देखा कि कुछ वोटर रुपया लेकर वोट देते हैं तो उन्होंने सोचा कि हम अपना वोट बग़ैर रुपये के क्यों दें? सभी मामूली स्थिति के ग़ैर जिम्मेदार वोटरों ने रुपया लेकर वोट देना शुरू कर दिया। इसके बाद ढोंगी उम्मेदवारों ने यह कहना शुरू किया अगर सारी बस्ती के सारे वोट हमें मिल जायँ तो हम मन्दिर, अखाड़ा, बग़ीची, प्याऊ, कुआं इत्यादि बनवा देंगे। इसके अनुसार स्वार्थी धनियों को या अयोग्य बेडसूले धनियों को वोट मिलने लगे। पर जब इन स्वार्थी मेम्बरों ने मेम्बर होने पर जो वायदे किये थे पूरे नही किये तो बाद में नक़द रुपया देना या चुनाव के पहले काम पूरा कराना शुरू कर दिया। इस कुप्रथा के अनुसार ज्यादातर वही मेम्बर पहुँचने लगे जिनके पास रुपया खर्च करने को था। यह बीमारी यहां तक बढ़ी कि चुङ्गी या डिस्ट्रिक्ट वोर्ड के बड़े बोर्डों और पोलिङ्गो पर पचीस सौ से लेकर पांच हज़ार रुपये तक खर्च होने लगे और कौन्सिल तथा असेम्बली के चुनाव में दस हजार से बीस हज़ार तक खर्च होने लगे और वह इस उम्मेद मे कि अगर मेम्बर हो जांयगे तो दूना और तिगुना रुपया पैदा कर लेंगे, क्योंकि लोगो का कहना है कि तेल तिली में से ही निकाला जाता है। जब यह बीमारी वोटरो में पूरा असर कर गई और इस प्रकार रुपया बांट बांट कर मनुष्य मेम्बर होने लगे तो जब चेयरमैनी के चुनाव का समय आने पर

ऐसे ही कुछ स्वार्थी और वेउसूले लोग चेयरमैनी के उम्मेदवार बने। जो मेम्बर रुपया खर्च करके मेम्बर हुये थे वह अब चेयरमैनी के वोट देने में रुपये की आशा करने लगे। कारण कि वे रुपया खर्च करके मेम्बर हुये हैं और वे उसको किसी न किसी प्रकार से वसूल करना चाहते है। बाज बाज स्थान पर तो ऐसा देखा गया है कि दस, पन्द्रह और बीस हजार रुपया तक चेयरमैनी के उम्मेदवारों ने खर्च किया है। यही नहीं, इसके अलावा नाच और शराब की दावते भी देनी पड़ी हैं और यह इसी उम्मेद पर कि चेयरमैन होने पर जितना रुपया खर्च किया जायगा उसके कई गुने रुपये वसूल कर लिये जायंगे।

लेकिन अब ऐसे २ वार्ड और पोलिंग होते जाते हैं जहाँ निस्वार्थी उम्मेदवारों को सवारी और कोशिश करने वालो वगैरः के लिये कुछ नहीं खर्च करना पड़ता है। इसके अलावा बहुत से समझदार और योग्य वोटर भी होते हैं जो वगैर किसी क़िस्म के स्वार्थ के और दवाब के सिर्फ उन्हीं सज्जनों को वोट देते हैं जो योग्य और निःस्वार्थी होते हैं।

मैं अपने मतदाताओं से आग्रह पूर्वक निवेदन करूँगा कि अगर वे देश और जनता की हालत सुधारना चाहते हैं तो उनको यह समझना चाहिये कि उनके वोट अर्थात् राय की क्या क़ीमत है और उसका किस प्रकार सदुपयोग करना चाहिये। वोट देश की अमानत है। जो अपना वोट रुपया लेकर या बिरादरी के ख्याल से या मित्रता के ख्याल से या रिश्तेदारी के ख्याल से किसी स्वार्थी उम्मेदवार को देता है, तो वह अपने देश अर्थात् अपनी मातृ-भूमि के साथ विश्वासघात करता है, क्योंकि वोट सिर्फ़ उन्हीं मनुष्यों को दिया जाना चाहिये

जो निःस्वार्थ भाव से देश और जनता की सेवा करने के लिये खड़े हों। प्रायः ऐसा देखा गया है कि बाज बाज समय सिर्फ एक वोट से हार जीत हो जाया करती है, इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को खूब सोच समझ कर अपने वोट का सदुपयोग करना चाहिये। अगर प्रत्येक वोटर अपने वोट का ठीक तौर पर उपयोग करता है तो देश और जनता का बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। प्रत्येक वोटर का हर उम्मेदवार के पूर्व जीवन पर विचार करना चाहिए और देखना चाहिए कि अब तक अमुक अमुक उम्मेदवार ने देश और जनता के हित के वास्ते क्या क्या कार्य किये हैं। कौन उम्मेदवार किस ख्याल से खड़ा हुआ है? कौन स्वार्थी है? कौन निःस्वार्थी है? कौन किस पार्टी की ओर से खड़ा हुआ है? कौन अपने आप स्वयम् खड़ा हुआ है, भविष्य मे क्या क्या करने के वास्ते वायदे करता है और कहाँ तक अपने वायदे को पूरा कर सकेगा। जो व्यक्ति सदा सत्य बोलता है; जो जनता के कार्यों में दिलचस्पी लेता है जो सरकार का खुशामदी नहीं है और समय पर ठीक उतरता है वह मनुष्य मुश्किल से धोखा दे सकता है पर जिनका पूर्व जीवन ठीक नहीं है या उन्होंने आज तक देश या जनता के कार्य्यों मे भाग नहीं लिया है, जो रुपया बांट कर अपना स्वयम् और अपने वोटरों का भी धर्म गँवा रहा है या मेम्बरी होने की उम्मीद मे बड़े बड़े वायदे कर देता है, जाति या धर्म के नाम पर वोट मांगता है या बेजा तौर पर खुशामद करता है या सरकारी दबाव अथवा अपने धन व ज़मीन का प्रभाव डालता है ऐसे उम्मेदवार को कभी वोट नहीं देना चाहिये।

मतदाताओं और जनता के लिये यह बात गौर तलब है कि अगर कोई व्यक्ति अर्थात् मेम्बर निःस्वार्थ भाव से मेम्बरी करता

है तो उसे तकलीफ़ उठाने और अपना समय पब्लिक की सेवा में लगाने के सिवाय कोई फ़ायदा नहीं है। इसलिये अगर कोई फ़ायदा नहीं तो वह दर दर मारे मारे क्यों फिरते हैं? क्यों उनकी खुशामद करते फिरते हैं? क्यों रुपया खर्च करते हैं? वोटरों को क्यों रुपया बांटते हैं? बड़े बड़े वायदे क्यों करते हैं? जाति और धर्म की दुहाई क्यों देते हैं? निश्चय यह समझ लो कि इसमें उम्मेदवार का कोई स्वार्थ अवश्य है। जरूरत तो इस बात की है कि जिस मनुष्य को मेम्बरी के वास्ते वोटर योग्य तजुर्बेकार, न्यायी और निःस्वार्थी समझें उसके पास जाकर प्रार्थना करें कि हम आपको मेम्बर बनाना चाहते हैं और उसको कोशिश करके मेम्बर करावें। यह कार्य किसी संस्था (Party) द्वारा अच्छी तरह हो सकता है। तमाम शहर या जिले के हर वार्ड या पोलिंग स्टेशन से कुछ समझदार, तजुर्बेकार, योग्य प्रभावशाली आदमियो को शामिल करके एक मजबूत जिला पार्टी बनानी चाहिये। इसके अलावा इसी तरह की हर वार्ड या पोलिंग में एक वार्ड या पोलिंग स्टेशन सबकमिटी बनानी चाहिये और उसके द्वारा निश्चय करना चाहिये कि किस किस व्यक्ति को मेम्बरी के वास्ते खड़ा करना चाहिये और तदनुसार जिन व्यक्तियों के वास्ते निश्चय हो उनके पास जाकर उनसे प्रार्थना करके उन्हें खड़ा करना चाहिये। इस प्रकार कोशिश करनी चाहिये कि स्वार्थी, चालाक या बे उसूले धनियों को खड़े होने की हिम्मत तक न पड़े। इस प्रकार चुनाव होने से देश, नगर और जनता का बहुत कुछ हित व सुधार हो सकता है। इस प्रकार की शहर या जिला कमेटी (Central Board) और वार्ड तथा पोलिंग कमिटी (Ward & Polling Committee) स्थायी होनी चाहिये जिनकी मीटिंग शहर, जिले और पोलिंग की हालत पर विचार करने को हुआ करे और हर मनुष्य को

अपनी चुँगी या जिला बार्ड सम्बन्धी तकलीफ़ दूर करने का मौक़ा मिला करे। शुरू में इस प्रकार से चुनाव कराने में अवश्य कुछ परिश्रम करना पड़ेगा पर जब जनता को इसके गुण मालूम हो जाँयगे तो नामुमकिन है कि कोई स्वार्थी उम्मेदवार पहुँच सके।

वर्तमान समय में अगर देश में कोई काम करने वाली या जीती जागती संस्था है तो वह अखिल भारत वर्षीय राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस है। कांग्रेस का उद्देश्य जनता की निष्पक्ष भाव से सेवा करने का है। जब कांग्रेस नौकरशाही से असहयोग या सत्याग्रह से छुट्टी ले लेती है उस समय यह स्थानीय संस्थाओं में (जैसे चुंगी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) और अगर उचित समझती है तो कौन्सिलों और असेम्बली आदि में भी उम्मेदवार भेजती है। कांग्रेस जहाँ तक मुमकिन होता है, अपने आजमाये हुये आदमियों को भेजती है पर कांग्रेस वाले यह सोच करके कि जनता यह न ख्याल करे कि कांग्रेस वाले सिर्फ अपने में ही से उम्मेदवार भेजना चाहते हैं अक्सर लोगो से प्रतिज्ञा पत्र लेकर उन्हें खड़ा कर दिया करती है पर इस प्रकार के व्यक्ति ज्यादा तर धोखा दिया करते हैं। इस कारण मेरे विचारानुसार नये उम्मेदवारों को कभी नहीं ग्रहण (Adopt) करना चाहिये। अगर अच्छे या योग्य आदमी अपने पास नहीं हैं तो ग्रहण (Adopt) करने के बजाय न खड़ा करना कहीं अच्छा है। उम्मेदवारों को भी यह चाहिए कि वह जनता की बराबर सेवा करते रहे जिससे जनता उनको अपने आप अपनावे और आखीर में न खुशामद करना पड़े।

चुनाव कसौटी है

चुनाव ही एक ऐसी चीज है जिसके द्वारा यह मालूम किया जा सकता है कि आया राय देने वाले सरकार के पक्ष में है या जनता के साथ है।

जब किसी गुलाम देश में वहां की सरकार जबर्दस्ती कोई अनुचित शासन विधान लादना चाहती है तो वहां की जनता उसका वहिष्कार करती है । इसका अर्थ यह होता है कि किसी देश हितैषी को उस शासन विधान में हिस्सा नहीं लेना चाहिये अर्थात् न किसी को खड़ा होना चाहिये और न किसी वोटर को वोट देना चाहिये। इसी उसूल के अनुसार सन् १९२१ और १९३० ई० में कौन्सिल, एसेम्बली आदि संस्थाओं का वहिष्कार किया गया था। यद्यपि जनता की आवाज की अवहेलना करने वाले अर्थात् देश द्रोही मेम्बरी के वास्ते खड़े हुये और ऐसे ही वोटर वोट देने गये, पर नतीजे से प्रत्यक्ष जाहिर होगया कि आम जनता नये विधान के पक्ष में थी या विपक्ष में। दोनो चुनावों में मुश्किल से दस पन्द्रह फीसदी वोटर वोट देने को पोलिंग (Polling Station) पर गये थे और कहीं कही तो इससे भी कम वोटर वोट देने गये थे । जो मनुष्य वहिष्कार के समय मेम्बरी के वास्ते खड़े होते हैं वे महा स्वार्थी, खुशामदी और देश द्रोही होते हैं। ऐसे लोगों से जनता को सदा बचते रहना चाहिये।

पीछे वापिस बुलाना

जो देश आजाद हैं उनमें से वहुत से देशो ने ऐसे नियम बना रक्खे हैं कि अगर कोई मेम्बर स्थानीय या राज्य संस्था में जनता के विरुद्ध कार्य करता है तो तीन चौथाई वोटर या इससे कम ज्यादा वोटर जहाँ जैसा क़ायदा हो, उसके अनुसार मिलकर प्रस्ताव भेजने से मजबूरन उस मेम्बर को इस्तीफ़ा देना पड़ता है।

जहाँ ऐसा डर अर्थात् कोड़ा होता है वहां मेम्बर या सभापति को जनता के खिलाफ अनुचित कार्य्य करने की हिम्मत नहीं पड़ती पर दुर्भाग्य वश भारतवर्ष में ऐसा क़ायदा नहीं है ।

जो मेम्बर बेशुमार रुपया अपने चुनाव में ख़र्च कर देते हैं और पूछने पर यह उत्तर देते हैं कि हम भाइयों की सेवा करने को यहाँ जारहे हैं उनसे यह प्रश्न करना चाहिये कि इस अवसर पर ही आप हज़ारों रुपया क्यों ख़र्च कर रहे हैं ? इससे पेश्तर आपने जनता के हित के लिये कितने हज़ार रुपया ख़र्च किया है और क्या क्या सेवाएं अथवा त्याग किया है ? उसका उत्तर यही मिलेगा कि हम अभी शुरू कर रहे हैं। उनको यही उत्तर मिलना चाहिये कि पेश्तर इसके कि यहां आप मेम्बरी के लिये खड़े हों अपने शुभ विचारो को विना मेम्बरी के ही कार्य्य रूप में लाइये। आगे चलकर अगर जनता मुनासिब समझेगी तो आप से मेम्बरी रूपी सेवा भी अवश्य लेगी। जो मनुष्य जैसे होते हैं वे छुपते नहीं उनकी कार्ति भलाई या बुराई जनता पर ज़ाहिर रहती है।

अगर वोटर अपने कर्त्तव्यो को नहीं समझेंगे और उम्मेदवार अपने फ़र्ज को नहीं अदा करेंगे तो स्वराज्य प्राप्त होने पर वह सब बेकार साबित होगा। अगर वोटर स्वार्थ वश देश के साथ विश्वास घात कर के ऐसे स्वार्थी और खुशामदी आदमी को चुन कर भेज दें तो निस्सन्देह वह जनता का हित नहीं कर सकेगा और सारी प्रजा की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। इस प्रकार कोई भी देश व समाज उस समय तक उन्नति नहीं कर सकेगा जब तक कि वह अपने अधिकारों का सदुपयोग नहीं करेगा अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने से बड़े बड़े देश नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

अगर जनता भारत की अर्थात् अपनी मातृभूमि की उन्नति चाहती है तो अपने शुभ आचरणों का वोटरों तथा उम्मेदवारों पर प्रभाव डाले ताकि वे अपने कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रहें और सदा मातृभूमि के लिये सद् भावना रखते रहें।

देशी राज्यों का कर्तव्य

प्राचीन समय में राजाओं व बादशाहों द्वारा राज्य अथवा हुकूमत की जाने की पद्धति थी। हिन्दुस्तान, चीन, जापान, फ्रांस, जरमनी, इङ्गलैण्ड, मिश्र, यूनान, परशिया इत्यादि देशो में राजा अथवा बादशाहो द्वारा राज्य किया जाता था। प्राचीन इतिहास से यह बात भी सिद्ध है कि तमाम बादशाह या राजा अच्छे या नेक नहीं हुआ करते थे। जो बादशाह अथवा राजा अपना कर्त्तव्य समझते थे और अपनी प्रजा के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे वही स्नेह और आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। और जो राजा या बादशाह अत्याचारी या कुटिल हुआ करते थे वे प्रायः पदच्युत कर दिये जाते और कभी कभी तो मार भी डाले जाते थे। इङ्गलिस्तान और फ्रांस के अतिरिक्त भारतवर्ष में भी राजा वेणु का उदाहरण वर्तमान है।

जो बादशाह या राजा नेक और न्यायी हुआ करते थे उनकी प्रजा भी बड़ी भक्ति से उनकी आज्ञाओं का पालन किया करती थी और हर प्रकार से राज्य प्रबन्ध में सहयोग दिया करती थी। प्रजा अपने बादशाह या राजा को ईश्वर तुल्य समझती थी। जहाँ अपने राजा का पसीना गिरता था वहाँ वह अपना खून बहाने

को तैयार रहती थी राजा अपनी प्रजा को पुत्र तुल्य समझता था और प्रजा अपने राजा को पिता तुल्य समझती थी। राजा अपनी प्रजा के दुःख या कष्ट नहीं देख सकता था, वह सदा उसको आराम और सुख पहुँचाने का प्रयत्न किया करता था, इसके बदले में प्रजा सदा प्रसन्न और शान्त रहती थी और हर प्रकार से न्याय युक्त कार्य किया करती थी। इसका फल यह होता था कि सदा राज्य की वृद्धि हुआ करती थी, ऐसे ही राज्य को 'राम-राज्य' कहा जाता था। प्राचीन ग्रन्थो में राजा और प्रजा के कर्तव्यों के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। यहां राजा और प्रजा के कर्त्तव्य के बारे में एक दृष्टान्त देना अप्रासंगिक न होगा।

राजगृह नगर में एक व्यापारी के यहां कार्यवश जिनदास नाम के श्रावक गये। जिनदास उस समय के बड़े मनुष्यो मे गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हें स्वजातीय अतिथि समझ कर उनके लिये भोजन का विशेष प्रबन्ध किया। जिनदास ने व्यापारी से कहा कि आप मेरे लिये इतना कष्ट न कीजिये, मेरा यह नियम है कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है उसी के यहां भोजन करता हूं, इस बात का मैं पहले विश्वास कर लेता हूं तब मैं आतिथ्य स्वीकार करता हूं। जिसकी आय असत्य से होती है उसके यहां भोजन नहीं करता हूं। यदि आप मुझे अपने यहाँ भोजन कराना चाहते हैं तो अपना आय-व्यय का लेखा बतलाइये। उससे मुझे यदि विश्वास होगया कि आपकी आय सत्य से होती है तो मुझे भोजन करने मे किसी प्रकार की आनाकानी न होगी।

जिनदास की प्रतिज्ञा को सुन कर व्यापारी विचारने लगा कि इनकी प्रतिज्ञा बड़ी कठिन है पर ऐसे पुरुषों को बिना भोजन कराये घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है। अतिथि सामान्य अतिथि नहीं है वरन् एक महान् आत्मा है।

व्यापारी ने विचारा कि ये मेरा लेखा अप्रतिष्ठा के लिये नहीं बल्कि अपनी यह प्रतिज्ञा क़ायम रखने के अर्थ जानना चाहते हैं कि मेरी आय किस प्रकार होती है। ऐसी अवस्था में मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सच्ची सच्ची बात कह दूँ और इन्हे भोजन किये बिना न जाने दूं। इस प्रकार सोच विचार कर व्यापारी ने जिनदास से कहा कि आप मेरा लेखा देख कर क्या करेंगे? सच्ची बात यह है कि मैं रात को चोरी करके धन कमाता हूं और दिन मे व्यापार का ढोंग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूं। व्यापारी की बात सुन कर जिनदास ने कहा कि ऐसी दशा मे मैं आपके यहां भोजन नहीं कर सकता। व्यापारी ने कहा कि यह तो आप अन्याय करते हैं। पहले दूसरे की अप्रतिष्ठा करना फिर उसके यहां भोजन भी न करना। यह कहां तक उचित है? जिनदास ने कहा कि यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा नही की है, फिर भी आप एक प्रतिज्ञा करने को तैयार हो तो मैं आपके यहां भोजन कर सकता हूँ।

व्यापारी के पूंछने पर जिनदास ने कहा कि आप चाहे अपने चोरी के कार्य को बन्द न करें परन्तु सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करलें। यदि आप इस प्रतिज्ञा को धारण करलेंगे तो मैं आपके यहाँ भोजन करलूंगा।

व्यापारी के ऊपर जिनदास के शब्दों का बहुत प्रभाव पड़ा उसने जिनदास की बात स्वीकार कर सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करली। व्यापारी के प्रतिज्ञा कर लेने पर जिनदास भोजन करके व्यापारी के यहां से विदा होगये।

सदा की भांति उस दिन भी व्यापारी आधी रात के समय चोरी करने निकला परन्तु आज राजा श्रेणिक और उनके बड़े

पुत्र अभयकुमार जी प्रजा का सुख दुःख जानने के लिये नगर में घूम रहे थे।

पहले समय के राजा लोग प्रजा की रक्षा का भार कर्मचारियों पर ही नहीं छोड़ देते थे बल्कि उसका सुख दुःख जानने के लिये स्वयं भी वेश बदल कर नगर, देहातों और राज्य में भ्रमण करते थे। ऐसा करने से उन्हें प्रजा की वास्तविक परिस्थिति की जानकारी हो जाती थी और उसके फलस्वरूप प्रजा कर्मचारियों या अन्य लोगों के अत्याचारों से सुरक्षित रह कर शान्ति-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करती थी। लेकिन आजकल के बहुत से राजाओं को यह बात शायद ही मालूम होगी कि उनकी प्रजा किस अवस्था में है और उनके राज्य की क्या व्यवस्था है ? पता हो भी कहां से ? उन्हें अपने आनन्द विलास, शिकार व यात्रा से फुरसत ही कहां मिलती है ? ऐसी अवस्था में प्रजा ता केवल कर्मचारियो पर ही निर्भर रहती है। चाहे वे उस पर अत्याचार करें या उसे सुखी रक्खें किन्तु राजा श्रेणिक आज के राजाओं के समान विलास प्रिय और प्रजा के धन को अकारण उड़ाने वाले न थे। वे स्वयं प्रजा के सुख दुःख का वृत्तान्त जान कर प्रबन्ध किया करते थे।

आधी रात के समय व्यापारी को अकेला जाते देख अभयकुमार ने उसे रोक कर पूंछा कि तुम कौन हो ? व्यापारी इस प्रश्न को सुन कर भयभीत तो अवश्य हुआ परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही उसने निर्भय हो उत्तर दिया "चोर"। व्यापारी का उत्तर सुनकर राजा और कुमार विचारने लगे कि कहीं चोर भी अपने को चोर कहता है। उन्होने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कहां जाते हो ? व्यापारी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया "चोरी करने"।

व्यापारी के इस उत्तर को सुन कर राजा और कुमार ने सोचा कि यह कोई विक्षिप्त पुरुष है। विनोद के लिये उन्होने फिर प्रश्न किया कि चोरी कहां करोगे? व्यापारी ने उत्तर दिया कि 'राज महल में'। व्यापारी के इस उत्तर से राजा और कुमार का अनुमान और भी पुष्ट होगया कि वास्तव में यह विक्षिप्त ही है। उन्होने व्यापारी को 'अच्छा जाओ' कह कर जाने दिया। इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकड़े जाने पर व्यापारी बड़ा प्रसन्न हुआ और जिनदास की कराई प्रतिज्ञा को बारम्बार याद करने लगा और उनकी प्रशंसा करने लगा कि मैं अपने को चोर बतलाता जाता हूं परन्तु ये लोग मुझे पकड़ते तक नहीं है। यदि उस समय मैं भागता या झूंठ बोलता तो अवश्य पकड़ लिया जाता जबकि सत्य बोलने से साफ बच गया।

व्यापारी इस विचार-धारा मे मग्न राज महल के पास जा पहुँचा। उस समय वहां महल के पहरेदार नीद मे झोका खारहे थे। ऐसा समय पाकर व्यापारी निधड़क महल में जा पहुँचा और कोष से रत्नों के भरे हुये दो डिब्बे चुरा कर चलता बना। लौटते समय उस व्यापारी को राजा और कुमार फिर मिले। उनके प्रश्न करने पर व्यापारी ने फिर अपने को चोर बताया। राजा और कुमार ने उसे पहले वाला विक्षिप्त समझ कर हंसते हुये प्रश्न किया कि कहां चोरी की! व्यापारी ने उत्तर दिया "राज महल मे चोरी करके रत्न के दो डिब्बे चुरा लाया हूँ"। राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रक्खा था इस लिये उसके इस उत्तर पर भी उन्हे कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय में जिनदास को धन्यवाद देता जाता था कि उन्होंने अच्छी प्रतिज्ञा

कराई जिससे मैं बच गया, अन्यथा मेरे बचने का कोई कारण न था; अब मुझे भी उचित है कि कभी झूंठ न बोलकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँ। इस प्रकार विचार करता हुआ व्यापारी अपने घर आया।

प्रातः काल कोषाध्यक्ष को कोष में चोरी होने की खबर हुई। कोषाध्यक्ष कोष को देखकर और यह जानकर कि चोरी में रत्नों के दोही डिब्बे गये हैं सोचने लगे कि चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय में अपना भी स्वार्थ-साधन क्यों न कर लूँ। राजा को तो मैं सूचना दूंगा तभी मालूम होगा कि चोरी हुई और उसमें अमुक वस्तु इतनी गई। इस प्रकार विचार कर कोषाध्यक्ष ने कोष मे से रत्नों के आठ डिब्बे अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि कोष में से रात को रत्नों से भरे हुये दस डिब्बे चोरी चले गये।

इस सूचना को पाते ही राजा को रात की बात का स्मरण हुआ। वह विचारने लगा कि रात को जिसने अपने आपको चोर बताया था सम्भवतः वही रत्नों के डिब्बे ले गया है। लेकिन उसने तो रत्नों के दो ही डिब्बे चुराकर लाने को कहा था फिर दस डिब्बे कैसे चले गये। जान पड़ता है कि आठ डिब्बे बीच ही में ग़ायब होगये हैं। इस तरह सोच विचार कर राजा ने अभय-कुमार को रात वाले चोर के पता लगाने की आज्ञा दी। नगर में घूमते घूमते अभयकुमार उसी व्यापारी की दुकान पर पहुँचा और उसके स्वर को पहचान कर अनुमान किया कि रात को इसी ने अपने आप को चोर बताया था। अभयकुमार ने व्यापारी से पूँछा कि क्या आपने रात को राजमहल में चोरी की थी? "हां! अवश्य की थी"। "तो क्या चुराया था और चोरी की वस्तु मुझे

दिखलाइये" ऐसा कहे जाने पर व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके दोनों डिब्बों को अभयकुमार के सामने रख दिया। वह सत्य का महत्त्व समझ चुका था इसलिये उसे ऐसा करने में किञ्चितमात्र भी हिचकिचाहट न हुई।

रत्नों के डिब्बों को देखकर विश्वास को पक्का करने के लिये अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि क्या तुमने बस यही चुराये थे? व्यापारी ने इस प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' में दिया। कुमार ने डिब्बों सहित व्यापारी को राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि इसने तो दो ही डिब्बे चुराये थे, जो मिल गये शेष आठ डिब्बों का पता लगाओ।

अभयकुमार ने अनुमान किया कि और डिब्बों में कोपाध्यक्ष की ही चालाकी होगी। उसने कोपाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि चोरी गये हुये, दस डिब्बो मे से २ डिब्बे मिल गये है शेष आठ डिब्बे कहाँ हैं? कोपाध्यक्ष घबड़ा उठा और कहने लगा कि जब चोरी हुई तो मैं अपने घर था ऐसी अवस्था में मुझे यह क्या मालूम कि शेष डिब्बे कहाँ हैं।

अभयकुमार कोषाध्यक्ष की घबड़ाई हुई दशा को देख और उसका असत्य उत्तर सुनकर ताड़ गये कि आठ डिब्बे के जाने में इसी की बेईमानी है। उसने कोपाध्यक्ष को भय दिखाते हुये कहा कि सत्य कहो अन्यथा बड़ी दुर्दशा को प्राप्त होओगे।

झूठ कहां तक चल सकता है। कोपाध्यक्ष के ओठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा 'आठ डिब्बे मैंने अपने घर मे रख लिये हैं। मैं अपने कर्त्तव्य और सत्य से च्युत होगया इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूं।'

अभय कुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बों सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्त्तता और व्यापारी की सत्यपरायणता देख राजा ने कोषाध्यक्ष को तो बन्दी गृह भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियुक्त किया।

राजाने व्यापारी को सत्य बोलने के कारण अपराधी होते हुये भी उक्त अपराध का कोई दण्ड देने के बदले उसे कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। इसका प्रभाव लोगों पर क्या पड़ा होगा यह विचारणीय बात है। अपराध तो व्यापारी और कोषाध्यक्ष का लगभग समान ही था। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जा कर जेल भेजा गया और सत्य के कारण ही व्यापारी को अपराध का दण्ड मिलने के बदले कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से लोगों के हृदय में उसके न्याय और सु-प्रबन्ध में कितनी दृढ़ता हुई होगी।

व्यापारी जब कोषाध्यक्ष पद पर पहुँच गया तब उसने अपने दूसरे दुर्गुण भी त्याग दिये और वह धर्मात्मा बन गया। अब उसकी भावना ऐसी होगई कि उसने पहले जिस जिस के यहां चोरी की थी उन सब का माल उन्हें लौटा दिया।

इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि प्राचीन समय में राजा किस प्रकार अपनी प्रजा की देख भाल किया करते थे और लोगों के भाव तथा विचार देख कर दण्ड दिया करते थे—न कि आज कल के अनुसार केवल वन्दी गृह भर देने के लिये।

भारतवर्ष में एक से एक बड़े बड़े राजा, महाराजा और सम्राट् होगये हैं जिनका राज अनक़रीब सारे भारतवर्ष, अफगानिस्तान

बिलोचिस्तान और तिब्बत आदि देशों तक था। (बुद्धकालीन भारत में छोटे २ प्रजातन्त्र राज्य भी थे) इनमें दो मुख्य सम्राट् चन्द्र गुप्त और अशोक होगये हैं। अंग्रेजो के आने से पहले भारतवर्ष भिन्न २ बादशाहों, राजे, महाराजो के हाथ में बटा हुआ था। जैसे मुग़ल बादशाह, मरहठे, राजपूत, सिक्ख इत्यादि।

वर्तमान समय में भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य है। इनके अलावा यहाँ छोटी बड़ी कई सौ देशी रियासतें हैं। इन में से कई रियासतों के अधिकारी अपने आन्तरिक राज्य कार्य में बिलकुल स्वतन्त्र हैं-जैसे मैसोर, बरोदा, इन्दौर, ग्वालियर, हैदराबाद, भूपाल और जयपुर इत्यादि। वर्तमान समय में इन देशी रियासतों की हालत अंग्रेजी राज्य के मुक़ाबिले कहीं पीछे है। अगर देशी रजवाड़ों ने उद्योग और परिश्रम किया होता तो वे उन्नति क्षेत्र में कहीं आगे होते। इस समय संसार में जो तरक्की देखते हैं वह पिछले डेढ़ सौ वर्ष में ही हुई है। जो शक्तियां निरन्तर उद्योग और प्रयत्न शील रहीं उन्होंने आज आश्चर्यजनक उन्नति करली है, जैसे अमेरिका, फ्रान्स, जर्मनी, कैनेडा, जापान, इत्यादि। यह कहावत मशहूर है कि:—

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठि।
हौं बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठि॥

अर्थात् जिन्होंने जी तोड़ परिश्रम किया उन्होंने हर प्रकार की उन्नति अथवा तरक्की की है, पर जो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे या ऐशो-आराम में व्यस्त हो रहे हैं वे जहाँ के तहाँ हैं। उन्होंने बजाय उन्नति के अवनति ही की है। जिन रियासतों ने परिश्रम किया उन्होंने बहुत कुछ तरक्की करली है, जैसे ट्रावनकोर, मैसूर इत्यादि।

अंग्रेजों और अन्य स्वतन्त्र शक्तियों को तो सदा अपनी स्वतन्त्रता क़ायम रखने और अनापसनाप ख़र्चे फौज व लड़ाई के समान तैयार रखने में करने पड़ते हैं। जब कि हमारे देशी रजवाड़ों को किसी क़िस्म की लड़ाई वग़ैरः की फिक्र नहीं होती उनको अपने धन को प्रजा के हि में लगाने का अच्छा सुभीता रहता है। स्वतन्त्र शक्तियों को तो अपनी सारी आमदनी का पच्चीस से लेकर पचास फीसदी तक ख़र्च केवल फौज वगैरः पर करना पड़ता है किन्तु हमारे यहाँ के देशी रजवाड़ों को फ़ौज के लिये मुश्किल से दो चार फी सदी ख़र्च करना पड़ता होगा, क्योंकि बाहरी रक्षा का भार इङ्गरेजी सरकार पर है।

अगर कोई यह कहे कि ये देशी रियासतें परतन्त्र हैं अर्थात् अंग्रेजों के आधीन हैं इस कारण कुछ तरक्की नहीं कर सकतीं तो उनका यह कहना सत्य नहीं है। देशी रियासतें अपने अन्दरूनी मामलों में बिल्कुल स्वतन्त्र हैं। वे जी चाहे जो स्कीम अर्थात् वाणिज्य, व्यवसाय या दस्तकारी का कार्य जारी कर सकती हैं। यह दूसरी बात है कि अपनी काहिली और कमजोरी को दूसरे के सिर मढ़ा जाय। अगर सच पूंछो तो जितना तरक्की का मौक़ा देशी रियासतों में राजाओं को है उतना बृटिश राज्य की प्रजा को नहीं हो सकता। कारण बड़े बड़े जंगल, बड़ी बड़ी खनिज पदार्थों की खानें, हर प्रकार की पत्थर की खानें और नाना प्रकार की वस्तुओं की उपज मुख्तलिफ रियासतों मे होती है जैसे लोहा, कोयला, गेरू, खड़िया, इमारती पत्थर, चूना, अवरक, जस्ता, सोना इत्यादि इसके अलावा इमारती लकड़ी, हर्र, वहेरा, आंवला, महुआ, ईंधन की लकड़ी और मुख्तलिफ किस्म के सब्जी वगैरः के जंगल के जंगल पड़े हुये हैं। अगर कोशिश और परिश्रम किया जाय तो नाना प्रकार के पदार्थ खोदकर निकाले जा सकते

हैं। अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि देशो ने जो उन्नति की है वह निरन्तर परिश्रम और उद्यम का ही फल है। यह मानी हुई बात है कि परिश्रम का फल निष्फल नहीं होता।

हमारे देशी रजवाड़ों के वास्ते तो वर्तमान समय एक स्वर्णमय अवसर है। वे यदि अपना थोड़ा सा ध्यान रियासत की उन्नति की ओर दें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। हमारे बहुत से राजा, महाराजा पढ़े लिखे व सभ्य व्यक्ति हैं। हर दूसरे चौथे वर्ष उनको यूरोप भ्रमण करने का शौक़ है पर वहाँ जाकर क्या वे अपनी आखें बन्द कर लेते हैं या उनके हृदय नहीं है कि जिससे इस बात का अनुमान नहीं करते कि उनकी रियासतो की हालत एक बड़े सजे महल के मुक़ाबिले में एक टूटे फूटे झोंपड़े के सदृश हो रही है। यदि वे लोग यूरोप से कुछ सीख कर भी आते हैं तो अपने ऐश और आराम की बातें। प्रजा के हित की बातों की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। यह दूसरी बात है कि वे लोग अपनी आयु के अमूल्य समय को और प्रजा के कठिन कमाई के धन को खो कर बाहरी ठाट बाट चाहे जैसा बनालें किन्तु प्रजा के लिये ठोस सुधार की आयोजना करना वे नहीं जानते।

हमारे देशी राज्यों का कर्त्तव्य

यद्यपि देशी राज्यों में उत्तरदायित्त्व पूर्ण प्रजातंत्र राज्य नहीं है और न वे पूर्णतया स्वतंत्र ही कहे जा सकते हैं तथापि एक अंश में हम उनको स्वराज्य के उदाहरण कह सकते हैं और जहां तक यह उदाहरण अच्छे बनाए जा सकते हैं वहाँ तक वे देश के लिये गौरव का विषय है। देशी राज्यों में देशी ही राजा होने के कारण शासकगण प्रजा के रीति रिवाज, बोल चाल और रहन सहन को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। यद्यपि देशी राज्य की प्रजा एक

व्यक्ति के राज्यशासन मे होने के कारण कभी कभी यथोचित न्याय से वंचित रहती है तथापि वहाँ पर इस बात की आशा रहती है कि राजा तक यदि पहुँच हो जाय और उसकी समझ में आ जावे तो वह कर्मचारियों के अन्याय एक क़लम से ठीक करा सकती है। अस्तु जो कुछ भी हो देशी राजागण यदि चाहें तो अपने अपने राज्यों में बहुत जल्दी सुधार करके सुधार के फल को बृटिश इण्डिया के सामने नमूना के तौर पर रख सकते हैं। हर्ष की बात है कि ट्रावन्कोर, बड़ौदा आदि राज्यों में ऐसा ही हुआ है। बड़ौदा मे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य और निःशुल्क कर दी गई है। वहाँ पर चलते फिरते पुस्तकालय आदि कई शिक्षा सम्बन्धी और भी प्रयोग हुए हैं जो कि दूसरे राज्यो के लिये आदर्श हो सकते हैं। देशी राज्यो को चाहिये कि वह अपने न्याय निष्पक्षता और उदारता से इस बात को बतला दें कि देशी शासन कितना उत्तम हो सकता है।

अपने देशी रजवाड़ो के रईसों से मैं तो अनुरोधपूर्वक यही निवेदन करूँगा कि वे अपने कर्त्तव्य का स्मरण करें और उस पर चलें अर्थात् रियासतों की हर प्रकार से उन्नति व तरक्की करें। इसी अवस्था मे वे आदर्श पुरुष कहलाये जा सकते हैं।

वर्तमान समय मे तीन प्रकार की रियासतें हैं एक तो जिनके रईस यथार्थ मे उन्नति के वास्ते परिश्रम कर रहे हैं। दूसरे वे जो बाहरी दुनियाँ के वास्ते दिखावटी काग़जी उन्नति करते हैं। तीसरे वे जिनकी अवस्था पहिले से भी खराब होती जाती है। ज्यादातर भारतवर्ष के देशी रजवाड़े काफ़ी कर्ज़ से दबे हुये हैं, यद्यपि उन्हें कोई बड़ी या छोटी लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी है, जिसमें उनका अनाप सनाप रुपया ख़र्च होगया हो, उन्हें कोई बड़ी स्कीम नहीं

तैयार करनी पड़ी है और न रियासत की कोई ख़ास उन्नति ही की है जिसमें बेशुमार रुपया ख़र्च करना पड़ा हो। इसका कारण सिर्फ यही है कि रईसों ने अपने राज्य कार्य्य मे पूरा ध्यान नहीं दिया और अपने ऐश व आराम में फ़िजूल रुपया ख़र्च किया। अगर यथार्थ में हमारे राजा महाराजा उन्नति करना चाहते हैं तो उनको जापान, अमेरिका वगैरः के इतिहास को पढ़ना चाहिये कि इन देशों ने किस किस प्रकार अपनी उन्नति व तरक्की की है।

मेरे विचारानुसार तो हर छोटा बड़ा रईस निम्नलिखित उन्नति बिना किसी प्रकार की रुकावट व अड़चन के कर सकते हैं:—

१—प्रजा को अनिवार्य शिक्षा देना।

२—कृषी व डेयरी फार्म विभाग स्थापित कराना।

३—सफाई, तन्दुरुस्ती, सड़क, रोशनी, अस्तपताल इत्यादि के वास्ते चुङ्गी व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्थापित करना।

४—राज्य प्रबन्ध के वास्ते गांवों में पञ्चायत और सारी रियासत के प्रबन्ध के वास्ते एक कौंसिल स्थापित कराना।

५—वाणिज्य, व्यवसाय, दस्तकारी, मिल फैक्टरी व कारखानों का स्थापित कराना। देहात के वास्ते दस्तकारी (Village Industry) की स्थापना कराना।

६ एक कमेटी कुछ अनुभवी विशेषज्ञों (Specialists) की हो जो सिर्फ यही सोचा करे कि किन किन आविष्कारों से या किन किन तरीक़ों से रियासत की माली अवस्था सुधारी जा सकती है व उसकी उन्नति की जा सकती है।

७—इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा जावे कि जितना पैसा बाहर से माल खरीदने में या और किसी रूप मे जाता है उतना या उससे ज्यादा वाणिज्य व्यवसाय द्वारा आ जाता है कि नही।

ऊपर की सारी बातें किस प्रकार सफलतापूर्वक की जा सकती हैं उसके उपाय नीचे दिये जाते हैं।

१—हिन्दुस्तानी और विलायती कृषि के विशेषज्ञों को कृषि विभाग का अध्यक्ष बनाना चाहिये जो उत्तम बीज, उत्तम खाद आदि का प्रबन्ध करें, जो ज़मीन कम उपज की है उसे उपजाऊ बनावें, जो ज़मीनें बेकार पड़ी हैं उनमें जंगल, घास या और कोई नई चीज़े पैदा करें, अच्छे और सस्ते हल या दूसरे औज़ार तैय्यार करवावें, पानी व आबपाशी का प्रबन्ध करवावे, साग भाजी व फलो की पैदावार का उचित प्रबन्ध करावें जिससे कि रियासत की आमदनी बढ़े व प्रजा को या रियासत के बाहर के लोगों को सब्ज़ी मिल सके।

डेयरी फार्मः—

२—यद्यपि यह विभाग कृषी से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है तथापि इसके उन्नति के वास्ते डेयरी फार्म के एक अच्छे विशेषज्ञ और सुयोग्य मनुष्य को अलग रखना चाहिये। उसका कार्य यह हो:—

गाय व भैंसों की नस्ल को सुधारना, अच्छे अच्छे सांड़ों का प्रबन्ध कराना, पशुओं की संख्या बढ़ाना, दूध बढ़ाना, अच्छे अच्छे बैल खेती के वास्ते पैदा करना, चरागाहों का प्रबन्ध कराना, घी दूध, मक्खन का प्रबन्ध कराना. अगर इनकी पैदावार ज्यादा हो तो बाहर भेजना, लोगों को तरकीब बताना कि उनको किस प्रकार अकाल के लिये चारे का प्रबन्ध करके रखना चाहिये,

सूखी घास के गुंजियों की या साइलो साईलेज को (Silo & Silage System) को तरक्की देना. रियासत में पशुओं की शुमार रखना और रियासत के पशु कटने के लिये बाहर न जाने देना।

३—रियासत के शहरों, तहसीलों व क़सबों में मुंसी स्थापित कराना और देहातों के वास्ते डि० बोर्ड क़ायम कराने जिनके द्वारा सफाई, चिकित्सा, सड़क, रोशनी, पानी आदि का प्रबन्ध हो। इनमें सम्मिलित चुनाव द्वारा सभासद् चुने जाने चाहियें। मत-दाताओं (Voters) की फेहरिस्त अंग्रेजी राज्य के अनुसार तैयार होनी चाहिये। सारी रियासत स्थानीय प्रबन्ध के वास्ते एक सुयोग्य और अनुभवी पुरुष होना चाहिए जो इस विभाग का प्रधान मिनिस्टर हो।

४—हर गांव में पंचायत स्थापित करना और राज्य प्रबन्ध के वास्ते बड़ी सभा (Council) स्थापित कराना। इसका चुनाव सम्मिलित होना चाहिये। तमाम राज्य का कार्य इसके जरिये से होना चाहिये। धन सचिव (Finance Minister) एक सुयोग्य और तजुर्बेकार मनुष्य होना चाहिये।

५—शिक्षा:—

सात वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक के बच्चों के वास्ते अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिये। राज व्यवस्था सीखने के वास्ते, इञ्जिनियरी का काम सीखने के वास्ते, कताई बुनाई का काम मिलों द्वारा सीखने के वास्ते, फैक्टरी इत्यादि के कामों को सीखने के लिये विद्यार्थियों को वजीफा देकर विदेशों मे भेजना चाहिये ताकि वे वहां से सीख कर रियासतों में काम शुरू करदें।

६—रियासत में मिल व फैक्टरी खुलनी चाहिये। जिससे कपड़े, चीनी आदि और जरूरी चीजें प्राप्त हो सकें।

७—इसके अतिरिक्त हर रियासत में समाज सुधार की बड़ी आवश्यकता है। जो समाज सुधार विदेशी सरकार नहीं कर सकती, वह देशी रजवाड़े बड़ी खूबी और आसानी से कर सकते हैं:—

(क) नशा जैसे शराब, गांजा आदि का बिल्कुल बन्द कर देना।

(ख) तवायफो अर्थात् रंडियों का बिल्कुल बहिष्कार कर देना।

(ग) बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, नुकता को क़तई रोक देना।

(घ) ब्याह शादी या किसी और काम में कम से कम खर्च करना।

(ङ) जनता के वास्ते कुछ त्यागी पुरुषों द्वारा सत्यता, सदाचार, सफाई, चिकित्सा इत्यादि विषयों पर व्याख्यान कराते रहना। अगर मुमकिन हो तो मैजिकलैन्टर्न (Magic Lantern) द्वारा उपदेश कराना।

८—वाचनालय। पुस्तकालय खुलवाना और स्टेट की ओर से एक पत्र निकलना अत्यन्त आवश्यक है।

९—जहाँ तक मुमकिन हो वहाँ तक हर प्रकार से राज्य को किफ़ायत शारी से खर्च करना चाहिये। अपनी हैसियत से ज्यादा नहीं बल्कि बहुत कम खर्च करना चाहिये। फिजूलखर्ची ही राजाओं के पतन का कारण होती है। जब तक कोष भरा रहता है तब तक भारत सरकार भी हस्तक्षेप कम करती है।

१०—एक कमेटी ऐसे विशेषज्ञों की हो जो इस बात की देख रेख रक्खे कि प्रजा को कोई कर असह्य तो नहीं हो रहा है। अनुचित कर को कम करे और आमदनी के उचित मार्गों की खोज करे।

अहिन्सात्मक सत्याग्रह

"सत्याग्रही का भरोसा आत्मबल पर रहता है"

"असहयोग का अर्थ है केवल आत्म त्याग"

गान्धी जी का मत है कि सरकार प्रजा की 'अनुमति और सहायता के विना देश मे रह ही नहीं सकती है।

यदि घर मे पिता अन्याय करे तो उससे असहयोग कर घर छोड़ देना चाहिये।

यदि पाठशाला में गुरू का व्यवहार नीति विरुद्ध हो तो शिष्यो को पाठशाला छोड़ देना चाहिये।

यदि किसी सभा अथवा संघ का प्रधान वेईमान हो तो सदस्यो को संघ से अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये।

इसी प्रकार किसी देश का शासक अन्याय करे तो प्रजा को उस शासक से असहयोग कर उसे कुमार्ग में जाने से रोकना चाहिये।

उपर्युक्त सभी अवस्था में असहयोगियों को कुछ न कुछ कष्ट व हानि उठानी ही पड़ेगी।

गाँधी जी असहयोग और वहिष्कार में वहुत भेद मानते हैं। उनका कहना है कि वहिष्कार में प्रतिकार के भाव का समावेश

होने से उसमें हिन्सा का लेश आजाता है। वे कहते हैं कि यदि हम असहयोग के मार्ग से हट कर वहिष्कार को अपना ध्येय बनावेंगे तो उन्नति की बजाय अवनति की ओर बढ़ेंगे। मेरे बिचार मे असहयोग के साथ अहिन्सा का भाव अवश्य सम्मिलित होना चाहिये। उससे हानि पहुँचाने वाले, लेने देने और घृणा के भाव का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये।

आज से दो हजार वर्ष पूर्व, दिया हुआ भगवान गौत्तम बुद्ध का उपदेश, "क्रोध को प्रेम से, बुराई का नेकी से, नीचता को उदारता से और असत्य को सत्य से विजय करना चाहिये' ही इस आन्दोलन की आत्मा है।

गाँधी जी कहते हैं:—

अपने शत्रु को जबर्दस्ती पवित्रता और त्याग के मार्ग पर लाना अन्याय है। उसे अपने बिचारों को मानने के लिये विवश करना और भी बड़ा पाप है। जिस समय तक शारीरिक बल के प्रयोग से हमारा विश्वास न हटेगा तब तक हमें अपने उद्देश्य में कभी सफलता प्राप्त न होगी।

शत्रु को अपने विचारों के प्रति आकर्षित करने का एक मात्र उपाय सहानुभूति और दया है। भारत संसार को अहिन्सा और सत्याग्रह का उपदेश देना चाहता है।

गान्धी जी कहते हैं:—

अहिन्सा और त्याग को निर्बल का शस्त्र मानना भूल है। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि अहिन्सा और त्याग के लिये मनुष्य में पाशविक बल की अपेक्षा कहीं अधिक साहस, शक्ति और सहिष्णुता की आवश्यकता है। इस लिये अहि-न्सा और त्याग का प्रभाव भी पशुबल की अपेक्षा कहीं अधिक

है। सामर्थ्य होते हुये भी शत्रु से बदला न लेकर उसे क्षमा कर देने के लिये मनुष्य को हृदय की विशालता की आवश्यकता है। यह भी याद रखना चाहिये कि शक्ति का श्रोत शारीरिक बल नहीं है वरन आत्मा और मन है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत की मुक्ति क्रोध में नहीं बल्कि क्षमा मे है।

गाँधी जी कहते हैं:—

सत्य का पोषण हम शत्रु को खाकर नहीं कर सकते। इसका उपाय स्वेच्छा पूर्वक त्याग और सहिष्णुता है। हमारी सफलता का परिणाम हमारे त्याग और कष्ट सहन पर निर्भर है। इसी लिये मसीह ने कष्ट और त्याग में संसार के दुःख को दूर करने का यत्न किया था।

भारत की दासता का उपाय अत्याचारी विदेशी शासन को चोट पहुँचा कर और उनके अत्याचार का बदला देकर नहीं हो सकता। उसका उपाय भारत के स्वयं अपनी इच्छा से कष्ट सहने और तप द्वारा ही हो सकता है।

गाँधी जी कहते हैं:—

सत्याग्रही को सदा स्वेच्छा पूर्वक दुःख, कष्ट सहन और मृत्यु तक का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये। सत्याग्रही का यह कष्ट सहन तथा न्याय एक आध्यात्मिक शक्ति को जन्म देता है जिससे अत्याचार का नाश होकर न्याय और शान्ति की स्थापना होती है।

जिस प्रकार महत्माजी का यह विश्वास है कि सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन केवल बली पुरुष कर सकते हैं उसी प्रकार उनकी धारणा है कि शारीरिक शक्ति का प्रयोग कायरता का प्रमाण है। प्रायः भय से व्याकुल होकर ही मनुष्य दूसरे पर आक्र-

मण करता है इस लिये दूसरों को चोट न पहुंचा कर स्वयं कष्ट सहलेना भय को जीत लेना है। कोई भी सत्याग्रही कायर नहीं हो सकता। सत्याग्रही यद्यपि अत्याचारी पर आक्रमण नहीं करता, उसे कष्ट नहीं पहुँचाता परन्तु वह किसी के अत्याचार के सम्मुख शिर भी न झुकायेगा। वह अपनी इच्छा से कष्ट सहन कर आत्मिक शक्ति से अत्याचार का विरोध करता है।

गान्धी जी कहते हैं:—

अत्याचार का अन्त केवल आत्मिकबल और सत्याग्रह से ही हो सकता है। बल प्रयोग से अत्याचार और अन्याय के लिये नवीन क्षेत्र तैयार होता है। बल प्रयोग से हम किसी के दिल में परिवर्त्तन नहीं ला सकते। हृदय को बदलने का उपाय केवल आत्मिक बल है।

सत्याग्रही दण्ड सहन और जेल जाने को आत्म शुद्धि का उपाय समझते हैं।

गाँधी जी सत्याग्रही के लिये स्वेच्छा पूर्वक कष्ट सहन स्वीकार करने का अर्थ केवल जेल जाना ही नहीं समझते वरन् वे सत्याग्रही को मृत्यु का सामना करने के लिये तैयार होना भी आवश्यक समझते हैं।

भय को मन से दूर किये बिना सत्याग्रह के मार्ग पर चलना असम्भव है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य मृत्यु से निर्भय न हुआ तो उसके लिये राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या है। जब तक हमारे मन में मृत्यु का भय वर्त्तमान है तब तक हम अपने आपको पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं समझ सकते। गांधी जी राजनैतिक प्रलय इस उद्देश्य को लेकर कर रहे हैं कि भारतीय जनता में राष्ट्रीय भाव, निस्वार्थ सेवा के भाव, कर्त्तव्य के पवित्र भाव,

जागृत एवं उन्नत हों और जाति एवं सम्प्रदाय के भेद-भाव दूर हो जाँय। महात्मा जी अपने वास्ते कुछ नहीं चाहते; उन्हे न अधिकार चाहिये, न धन चाहिये। हाँ यह अवश्य है कि उनका हृदय दरिद्रों का दुःख देख कर बहुत ही पीड़ित होता है और वे दरिद्रों मे ही दरिद्रनारायण के दर्शन करते हैं। वे अपने प्रत्येक कार्य्य मे सत्य, आध्यात्मिकता एवं सात्विकता को पकडे रहते हैं। इस लिये उनकी राजनीति भी धर्म मे समन्विष्ट होगई है। उनका यह भी कहना है कि जिस कार्य के करने मे मनुष्य अपनी शान्ति खो बैठता है वह काम सच्चा और सात्विक कभी नहीं है क्योंकि चित्त की चञ्चलता में मनुष्य की आध्यात्मिकता नष्ट हो जाती है और वही साधु के लिये आवश्यक है।

तृतीय खण्ड

धार्मिक और व्यवहारिक

"धर्मो रक्षति रक्षितः"

× × × ×

"बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।
साधन-धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सुधारा॥

× × × ×

"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

× × × ×

"परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

आत्म विश्वास

अपनी शक्तियो में और अपनी योग्यता में विश्वास रखना आत्म विश्वास कहलाता है। विश्वास ही सारी क्रियाओं का मूल है।

जो मनुष्य आत्म-विश्वास नहीं रखता वह संसार में कोई कार्य्य नही कर सकता। जिस मनुष्य में आत्म-विश्वास नहीं वह स्वयं अपना दुश्मन है। अगर कोई व्यक्ति अपने आत्म-विश्वास को डॉवाडोल अथवा कम करता है तो अवश्य उसे अपना शत्रु समझो। जब कोई भी कार्य्य हाथ में लिया जाय तो आत्म-विश्वासी होकर लेना चाहिये। जो कार्य्य जितने आत्म-विश्वास से किया जायगा उसमे उतनी ही सफलता मिलेगी। जिस प्रकार गेंद जितने जोर से मारी जाती है उतनी ही ज्यादा वह उछलती है। ठीक इसी प्रकार एक व्यक्ति कितना ही चतुर, कुशल और पढ़ा लिखा क्यों न हो पर वह उतनी ही उन्नति कर सकेगा जितना कि उसमें आत्म-विश्वास है। जो व्यक्ति अपने को किसी काम के योग्य समझता है उसे वह अवश्य कर लेगा पर जो शुरू ही में अपने को अयोग्य समझता है वह कदापि नहीं कर सकेगा ऐसे ही लोगों के लिये कहा जाता है कि रोवे गये मरे की खबर लाए।

संसार में जितने भी बड़े बड़े काम हम देखते हैं वे सिर्फ़ आत्म-विश्वास से ही हुये हैं। एक दम एक दिन ही में भाप के इञ्जिन का आविष्कार नही हुआ था। जिस मनुष्य ने यह आविष्कार किया उसमें पूर्ण आत्म-विश्वास था। उसने दिनों नहीं, महीनों नहीं वल्कि वर्षों निरन्तर परिश्रम करके अपने कार्यों में कामयाबी हासिल की। आजकल इस इञ्जिन से सिर्फ रेलगाड़ी ही नहीं चलती वल्कि मुख्तलिफ क़िस्म के कल कारख़ाने चलते हैं।

जिस मनुष्य में आत्म-विश्वास नहीं है वह पशु के समान है; जिस मनुष्य मे आत्म-विश्वास नहीं वह अपने जीवन को भार रूप समझने लगता है आत्म-विश्वास से मामूली से मामूली आदमी बड़े बड़े काम कर जाते है। हम अक्सर दंगलों मे देखते हैं कि एक मामूली पहलवान एक वड़े पहलवान को वात की वात में मार लेता है। इसका अर्थ सिर्फ यही है कि मामूली पहलवान में आत्म-विश्वास अर्थात् जी दारी है जब कि वड़े पहलवान में आत्म-विश्वास नही है।

लगातार यह ख्याल करते रहना, कि हम नाचीज़ हैं, कमज़ोर या दरिद्री होने के कारण संसार में कोई कार्य नहीं कर सकते, आदमी को निकम्मा और वोदा वना देता है। मनुष्य जो कुछ सोचता है वही वन जाता है। मनुष्य के विचारो का मनुष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक वल भी आत्म वल पर ही निर्भर है। मनुष्य वालिश्त भर चौड़ी खेत की मेड़ पर वड़ी आसानी से चल लेता है किन्तु डेढ़ वालिश्त चौड़ी दीवाल पर नहीं चल सकता। इसका एक मात्र कारण यही है कि दीवाल पर चलने में वह भय के कारण आत्म-विश्वास खो वैठता है। जिन

लोगो ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर जल और वायु पर विजय पाई है, और जिन्होंने संसार पर अपना अङ्क छोड़ा है वह सब लोग आत्म-विश्वासी हुए हैं। जिनके मन में अटक रहती है वही अटक रहते है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा पर विश्वास रखना चाहिये और सदा यह भरोसा रखना चाहिये कि जो भी कार्य्य सुपुर्द किया जायगा उसे मैं पूरी तौर पर कर सकूँगा। क्या कारण है कि एक मामूली आदमी मेवाफरोश यहूदी का लड़का लार्ड रीडिङ्ग और भारतवर्ष का वायसराय बन गया? क्या वजह है कि एक मामूली कारीगर जिसका नाम कारनेगी था, दुनियाँ का सबसे बड़ा धनी आदमी होगया? क्या वजह है कि एक मामूली आदमी जिसका नाम बीरबल था अकबर बादशाह का वजीर होगया? क्या वजह है कि एक अपढ़ मनुष्य जिसका नाम कालिदास था एक धुरन्धर विद्वान् होगया? अगर कोई कारण था तो सिर्फ यही कि इन महान् पुरुषों में आत्म-विश्वास था जिसके कारण इन लोगों ने अपना परिश्रम जारी रक्खा और इस महत्त्वपूर्ण पद को प्राप्त किया।

क्या कारण है कि संसार में कुछ आदमी सफलता की सर्वोच्च श्रेणी पर जा पहुँचते हैं और दूसरे जिनके शरीर में भी वही शक्ति छिपी हुई है असफल होते हैं। अगर कोई खास वजह है तो यह कि उनमें आत्म-विश्वास नहीं होता है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य व नवयुवक को चाहिये कि कोई भी कार्य्य हाथ मे ले तो पूर्ण आत्म-विश्वास से उसे करे और उसे सफल बना कर ही छोड़े।

संसार में मनुष्य ने आत्म-विश्वास से बड़े बड़े काम किये हैं। यह केवल आत्म-विश्वास ही था जिससे कोलम्बस, देश के तमाम लोगों के मजाक और ठट्ठा उड़ाते रहने पर भी

अपने निश्चय पर अटल रहा और नई दुनियां की खोज में निकल पड़ा यहाँ तक कि उसने अमेरिका का पता लगा लिया। इसके अलावा संसार में बड़ी से बड़ी ईजादें केवल आत्म-विश्वास और निरन्तर परिश्रम के आधार पर ही हुई हैं।

अगर हम में आत्म-विश्वास है और हम ईश्वर में भरोसा रखते हैं तो हम अपनी कठिनाइयों के बड़े से बड़े पहाड़ को आसानी से हटा सकते हैं, और संसार मे हम अपने जीवन को सफल और उच्चाशय बना सकते हैं। यही बात उन विद्यार्थियों के साथ लागू होती है जो निरन्तर परिश्रम और आत्म-विश्वास से पढ़ते हैं, वे अवश्य परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं और जो आत्म-विश्वास रहित परिश्रम करते हैं वे ज्यादातर नाकामयाब होते हैं।

हनूमान जी के लिये कहा जाता है कि जब उनको उनके बल का स्मरण दिलाया जाता था तभी उनमें बल आ जाता था। यह बात चाहे ठीक हो या गलत परन्तु इसमें एक बड़ा वैज्ञानिक रहस्य है। जो लोग अपने बल को नहीं जानते वह लोग अपने बल का प्रयोग नहीं कर सकते। जो लोग अपने बल में विश्वास रखते हैं वह लोग कठिनाइयो के पहाड़ को सहज में उठा कर फेंक देते हैं।

हमारे गृहस्थों और नवयुवकों को चाहिए कि वह अपने में विश्वास रक्खें, दीनता के भावों को अपने पास न फटकने दें और प्रसन्न चित्त रह अपना कर्त्तव्य पालन करें; ऋद्धियां सिद्धियां उनकी आज्ञानुवर्तिनी रहेंगी और सफलता सदा उनके द्वार की शोभा बढ़ावेगी।

सदाचार जीवन की शोभा है

जिस प्रकार नदी बिना धार के, जंगल बग़ैर घने पेड़ों के, पहाड़ बग़ैर सब्ज़ी के, वृक्ष बग़ैर पत्तो के, पुष्प बिना सौरभ के, राजा बग़ैर राज्य के. घर बग़ैर मनुष्यों के शोभा को प्राप्त नहीं होता ठीक उसी प्रकार मनुष्य बिना सदाचार के शोभा नहीं पाता। मनुष्य जीवन में सबसे ज़रूरी और आवश्यक चीज़ उसका सदाचार है क्योंकि मनुष्य आचार ही का बना हुआ है। एक विद्वान का कहना है कि अगर मनुष्य का धन गया तो कुछ नहीं गया, अगर तन्दुरुस्ती गई तो कुछ गया, लेकिन अगर सदाचार गया तो सब कुछ चला गया।

If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost something is lost.
If character is lost everything is lost.

जीवन की शोभा सदाचार से बढ़ती है, बल्कि यों कहना चाहिये कि जीवन के सारे आनन्द, सुख और उत्तम कार्य सदाचार पर अवलम्बित हैं। यह लौकिक ही नहीं वरन् पारलौकिक सुखों का भी साधक है। संसार में एक मनुष्य इसके बल से बड़े से बड़े कार्य कर सकता है। सदाचारी मनुष्य अपनी प्रमाणिकता

के कारण लोगों पर एक प्रकार का वशीकरण सा डाल देता है और उनके मनमें उसके प्रति आप से आप पूज्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं। सब लोग उसकी बातों पर दृढ़ विश्वास रखते हैं। सदाचारी मनुष्य को लोग मनुष्य नहीं समझते बल्कि देवता तुल्य मानते हैं। इसी लिये यह देखा जाता है कि संसार में जितनी बातें श्रेष्ठ, सुन्दर और मानव जाति के लिये परम कल्याण कारक है उन सब के कार्य्यकर्त्ता और रक्षक सदाचारी ही हैं। इस बात की सत्यता एक छोटे से उदाहरण से प्रमाणित की जा सकती है। आप असंख्य सदाचारियो और सच्चरित्रों को एक स्थान पर बसा दीजिये। वे सब के सब केवल शान्ति पूर्वक ही नहीं रहेंगे वरन् एक दूसरे के सुख और कल्याण की वृद्धि में भी बहुत कुछ सहायक होंगे। उनका समाज साम्यमय जीवन व्यतीत कर परम सुखी, सम्पन्न और उन्नति शील रहेगा। ऐसा साधु समाज सदा बढ़ता और फूलता फलता ही रहेगा। पर अधिक नहीं, सौ पचास लुच्चे, उचक्के, बदमाशों, चोरो, जुआरियों, शराबियों को एक स्थान पर बसा दीजिये फिर देखिये कि कितनो के सिर फूटते है, कितनी लड़ाइयां होती हैं, कितनी चोरियां होती हैं और कितना व्यभिचार होता है। ऐसा समाज पच्चीस पचास वर्ष तक नहीं चल सकेगा और शीघ्र ही उसका सर्वनाश हो जायगा। तात्पर्य यह है कि संसार को स्वर्ग बनाने की शक्ति सदाचार मे है और नर्क बनाने की ताक़त दुराचार में है। दुराचार मनुष्य को पतन की ओर ले जा कर नर्क के द्वार पर पहुँचा देता है।

यही कारण है कि सदाचारियों के प्रति मनुष्यों के मन में अपने आपही पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी एक सदाचारी और बुद्धिमान मनुष्य को लीजिये और देखिये कि दोनों में से किस के प्रति आपके मनमें सबसे अधिक पूज्य भावों की जागृति

होती है। स्वभावतः आपका मन सदाचारी की ओर ही अधिक जावेगा। इसका मतलब यही है कि सदाचारी में अनेक गुण होते हैं, जिनके कारण वह न केवल सभ्य और साधारण लोगों के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करता है बल्कि मूर्ख, दुराचारी तक का ध्यान और प्रेम अपनी ओर खीच लेता है।

सदाचारी पुरुष सदा सत्य बोलता है, शान्त रहता है, विश्वास-पात्र होता है। संकट के समय भयभीत नहीं होता, घबराता नहीं, छोटो की सहायता और बड़ो का आदर करता है। वह कर्त्तव्य परायण होता है, अपनी स्त्री के सिवाय संसार की तमाम स्त्रियो को अपनी माता बहिन तुल्य समझता है, कोई नशा नहीं करता और उसमें कोई बुरी आदत या टेव नही होती है, यानी यो कहना चाहिए कि उसमें कोई अवगुण नहीं होता, यदि होता भी है तो न्यूनातिन्यून। उसकी वृत्ति सात्विक होती है। उसमें आत्म बल और आत्म-विश्वास होता है और वह समाज, देश तथा मानव जाति का सच्चा सेवक होता है। उसे धन सम्पत्ति की कभी परवाह नहीं रहती। वह अपने सद्गुणो से ही मालामाल रहता है और धन को सदा अनाचार और दुष्कर्मों का मूल समझता है। उसका हृदय सदा सन्तुष्ट और वलिष्ठ रहता है। उसके लिये उसका सदाचार एक बादशाह की बादशाहत से बढ़कर होता है। वह अपनी सभी बातो में अविकल रूप से मर्यादा का आदर और उसकी रक्षा करता है। एक सदाचारी पुरुष जो कुछ करता है उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर करता है न कि मान या कीर्ति के लिए। पर होता यही है कि वह समाज मे बड़ी प्रतिष्ठा पाता है और लोगों के हृदय में उसके वास्ते बहुत अधिक आदर और मान का स्थान हो जाता है। महाराज हरिश्चन्द्र सत्यनिष्ठ थे इसीलिये उन्होंने अपना राज्य

छोड़ा और 'बेंचि देह दारा सुवन' चाण्डाल के यहाँ दासत्व स्वीकार किया पर सत्य की रक्षा के लिये उन्हें जो कुछ कर्त्तव्य कर्म जान पड़ा उससे मुँह न मोड़ा। इसीलिये वह जगद्वन्द्य हुए और सत्यवादियों में श्रेष्ठ गिने गये। सत्य के कारण उनकी ख्याति अटल होगई। गोस्वामी तुलसीदास, महाराज शिवाजी, जस्टिस रानाड़े, लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी आदि क्या कभी केवल अपनी बुद्धिमत्ता के कारण ही इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते थे? कभी नहीं। इनकी प्रतिष्ठा का मुख्य कारण उनका सदाचार ही है। इन लोगो ने सदा एक उच्चादर्श अपने सामने रक्खा और उस ओर बढ़ने की चेष्टा की। मनुष्य को बड़ा बनना सहल है किन्तु उसके साथ भला और सदाचारी बनना कठिन है। बड़ा आदमी परिस्थितियों के कारण संसार की उत्ताल तरङ्गों के साथ उठता और गिरता है किन्तु सदाचारी मनुष्य ध्रुव की भांति दृढ़ वृत रहकर सदा अचल और अटल रहता है।

सदाचार सिखाने के वास्ते कोई विशेष स्कूल नहीं है बल्कि उसका श्रीगणेश तो माता के उदर से ही हो जाता है। माता पिता के आचार व ख्यालात् का प्रभाव बच्चे पर जन्म काल से ही पड़ना शुरू हो जाता है। यदि माता पिता सदाचारी हैं तो बच्चा भी अवश्य सदाचारी होगा और बाद में ज्यों ज्यों वह बड़ा होता है और जैसी जैसी उसकी संगति मिलती है वैसे वैसे उसका चरित्र बनता जाता है। अगर उसके साथी अच्छे आचार के होते हैं तो वह सदाचारी बनता है और अगर उसकी सुहबत बुरे विद्यार्थियों या आवारा नवयुवकों के साथ होती है तो ज्यादातर वह वैसा ही बन जाता है। सदाचार के बल से एक छोटा सा मनुष्य भी अपने को बहुत कुछ उठा सकता

है। बड़े लोग अपने जीवन काल में ही लोगों को शिक्षा नहीं देते वरन् उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके नाम पर भी बड़े बड़े कार्य हो जाते हैं। उनका शरीर तो नहीं रहता पर उनके आदर्श कृत्य अजर और अमर होते हैं। किसी ऊँचे स्थान पर रक्खे हुये दीपक के समान महात्माओं का जीवन और उनके सत्कृत्य प्रकाश देते हैं। महात्मागण, अपनी अमर कृतियो और वचनावलियों के रूपमें यशः शरीर धारण कर जीवित रहते हैं। यद्यपि महात्मा तुलसीदास का भौतिक शरीर नहीं है तथापि उनके रामचरित मानस ने अगणित जीवनों को शान्ति प्रदान की है। इसी प्रकार नानक, सुकरात, महात्मा बुद्ध और ईसामसीह अब भी असंख्य जनो के अन्ध-कारमय हृदयों को आलोकित कर रहे हैं।

कभी किसी गुमराह मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिये कि मैं अपने स्वभाव में परिवर्त्तन नही कर सकता अथवा बुरे कामों को छोड़कर अच्छे कामों को नहीं कर सकता अर्थात् सदाचारी नहीं बन सकता। यह उसके दृढ़ निश्चय पर अवलम्बित है। जिन जिन पुरुषों ने यह निश्चय कर लिया कि हम नशा नहीं करेंगे या जुआ नहीं खेलेंगे इत्यादि, वे सदा के वास्ते उन व्यसनों से बच गये। इसके अलावा अपने जीवन सुधारने और सदाचारी बनाने की प्रधान कुञ्जी कर्त्तव्य-पालन में है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य पालन करता है वह न तो कभी दुःखी रहता है और न कभी जमाने की शिकायत करता है। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ध्यान छोड़ देता है अथवा जान बूझ कर उसका पालन नहीं करता वह कभी सुमार्ग पर नहीं चल सकता। सदाचार और कर्त्तव्य पालन का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि हम उन दोनों को पृथक् नहीं कर सकते। यदि हम सदाचारी बनना चाहते हैं तो हमें कर्त्तव्य पालन की आवश्यकता होती है और यदि हम अपने

कर्त्तव्यो का पालन करते रहें तो आप से आप सदाचारी हो जाते हैं। अपने कर्त्तव्यो को जानना और उनके अनुसार कार्य करने का ध्यान रखना सदाचार का मानो बीजारोपण करना है।

जिस प्रकार विद्या और बुद्धि आदि का सदाचार के साथ कोई आवश्यक और अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार धन और सम्पत्ति का भी सदाचार के साथ कोई लगाव नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि सदाचारी बनने के लिये धनी होने की आवश्यकता है, वे बड़ी भूल करते हैं कारण कि अकसर ऐसा देखा गया है कि धन तो कभी कभी कुमार्ग मे जाने का साधन बन जाता है। गरीबो में जैसे सच्चे, ईमानदार और विश्वसनीय लोग होते हैं वैसे सम्पन्न वर्ग मे कठिनता से मिलेंगे। अगर हम भले आदमियों के साथ रहे और अच्छे कर्म करें तो हम अवश्य सदाचारी बन जांयगे। किसी ने ठीक कहा है कि अपनी वृत्तियो पर अधिकार रखना एक बड़े साम्राज्य के प्रबन्ध करने से कहीं ज्यादा है। दुर्व्यसनों से वचने और सन्मार्ग मे लगने के लिये आत्म-संयम से ही अधिक सहायता मिलती है। आत्म संयम करने की शक्ति सब लोगों में कुछ न कुछ हुआ करती है और इसका अभ्यास करने से इसको बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है। इसके वास्ते थोड़े परिश्रम की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य को सदा आत्म-निरीक्षण, आत्म-शिक्षण और आत्म-संयम करते रहना चाहिये।

सदाचारी मनुष्य सदा अपने मनको व्यवस्थित और वश में रखने का प्रयत्न किया करता है। जब कभी मन गलत रास्ते पर जाने को कोशिश करता है तो सदाचारी पुरुष तुरन्त विचार करता है कि वह अपने पथ से हट रहा है। इस प्रकार वह अपने दृढ़

विश्वास के अनुसार अपने मन को बुरे मार्ग में जाने से रोक लेता है।

मनुष्य एक दिनमें सदाचारी नहीं हो जाता। सदा कुछ न कुछ अभ्यास किया करता है—जैसे स्वर्ण की जांच करने के लिए उसे अग्नि में तपाया जाता है उसी प्रकार समय समय पर सदाचारी की जांच हुआ करती है। पर जिनमे आत्म-विश्वास, और आत्म सम्मान तथा दृढ़-निश्चय है वह सदा स्वर्ण के समान खरे उतरते हैं। प्रलोभन मे न आना ही सदाचारी की विजय और सफलता का मूल कारण है। जहां एक बार प्रलोभन में पड़ा वहां वर्षों का तप भ्रष्ठ हो जाता है। जो सदाचार का अभ्यास कठिनाई से डाला था वह नष्ट हो जाता है। फिर नया अभ्यास डालना पड़ता है, इतना ही नहीं जहां पतन के मार्ग में पड़ा वहां गिरता ही जाता है। एक बार दृढ़ता पूर्वक 'ना' कर देना अच्छा है। एक बार गिर कर फिर सम्हलने की आशा करना दुराशा मात्र है।

प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो सकता है बशर्तेकि उसमें आत्म-सम्मान और कर्त्तव्य का भाव हो। धीरे धीरे आदमी बहुत कुछ अपने आचरणों मे उन्नति कर सकता है। वर्त्तमान समय मे प्रत्येक भारत वासी को सदाचारी होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि बिना सदाचार के कोई भी देश आजाद नही हो सकता है। सदाचारी मनुष्य की आत्मा अपनी जिन्दगी में और मृत्यु के बाद भी शान्ति पाया करती है। सदाचारी सदा निर्भय रहता है। मनुष्य मात्र की सुन्दरता उसके सदाचारी होने मे है। दुराचारी मनुष्य स्त्री, युवक, विद्यार्थी इत्यादि कितना ही सुन्दर व विद्वान क्यो न होवे वह अपने कुल, जाति व देश के वास्ते कलंक और भार रूप हैं। सदाचार के बिना विद्या भी निष्फल है। रावण विद्वान होता हुआ भी राक्षस ही रहा।

इसमें सन्देह नहीं कि सदाचारी मनुष्य देश के प्राण होते है। किसी देश के सुधार और निरन्तर उन्नति का मुख्य कारण वहां के लोगों का सदाचार ही है। लोगों में धैर्य, पराक्रम और एकता आदि गुण बिना सदाचार के आही नहीं सकते और जब तक लोगों में ये गुण नहीं तब तक देश मे राष्ट्रीयता नहीं आती। जिस देश के निवासी स्वार्थी और दुर्व्यसनी हों, वह देश यदि उन्नति के शिखर पर भी पहुंच चुका हो तो भी उसका अधःपतन अवश्य और अति शीघ्र हो जायगा। जो देश अधःपतित होकर हीनावस्था को पहुँच गया हो, उसमें यदि दैवयोग और ईश्वर कृपा से सच्चे देशभक्त स्वदेशाभिमानी पुरुष उत्पन्न हों तो उन्हें उचित है कि वे अपने देश के निवासियों को सबसे पहिले सदाचारी बनाने का प्रयत्न करें, क्योंकि बिना सदाचार के कभी किसी देश का अभ्युदय नहीं हो सकता।

सत्संगति का महत्व

जिस प्रकार एक कुम्हार चाक द्वारा मिट्टी से जैसा जी चाहे वैसा वर्तन बना सकता है उसी प्रकार एक मनुष्य, युवक या विद्यार्थी अपने आस पास के वातावरण के चक्र मे ढल कर बन जाता है। अगर कोई मनुष्य अच्छे और सदाचारी मनुष्य की संगति करेगा तो वह अपने को एक आदर्श पुरुष बना लेगा और अगर वह चोर, जुआरी तथा निकम्मे लोगो की संगति में रहेगा तो अपने को एक घृणित व्यक्ति बना लेगा। जिस प्रकार से एक मामूली मूंज की रस्सी से घिस घिस कर पनघट के पत्थर पर निशान पड़ जाया करते हैं ठीक उसी प्रकार मनुष्य के मन पर संगति का अंक बन जाता है।

यह प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य, छोटा हो या बड़ा बुरी आदतों को तुरन्त ग्रहण कर लेता है और अच्छी बातों को देर मे हासिल करता है। ज्यादातर सगति का असर नवयुवको और विद्यार्थियो पर जल्दी पड़ा करता है क्योंकि वे बिलकुल नातजुर्बेकार अर्थात् अच्छी बुरी बातो से अनभिज्ञ होते हैं। बाल अवस्था के बाद विद्यार्थियो और नवयुवको का अधिकांश समय घर के बाहर बीतता है। उनका सुधरना या बिगड़ना उनकी

संगति के अच्छे या बुरे होने पर निर्भर रहता है। यदि संगति अच्छी होती है तो वे सुधरते हैं और बुरी होती है तो बिगड़ते हैं और आगे चल कर संसार मे उसी के अनुसार अच्छे या बुरे काम करते हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बहुत थोड़े नवयुवकों के माता पिता इस बात पर ध्यान देते हैं कि लड़का किस स्वभाव के युवक या विद्यार्थियो के साथ रहता है, क्या लिखता पढ़ता और क्या करता है? ज्यादातर देखा जाता है कि अस्सी या पचासी फ़ीसदी माता पिताओ को पता तक नहीं रहता कि लड़का क्या पढता है और किनकी सुहबत मे रहता है और क्या क्या करता है। ऐसी अवस्था में अधिकतर विद्यार्थी या नवयुवक यदि गुमराह हो जायँ और बाद में एक बहुत बुरा जीवन व्यतीत करें तो आश्चर्य ही क्या है?

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो लड़के अपनी बालावस्था में बड़े सुशील और सात्विक स्वभाव वाले थे वे दो चार वर्ष मे बुरी संगति मे पड़कर ऐसे बिगड़ जाते हैं कि उनका सुधारना कठिन होजाता है। बालको या बच्चो के विषय में यह कहा जाता है कि वे अनुकरणप्रिय होते हैं पर युवक या विद्यार्थी भी कुछ कम अनुकरण प्रिय नहीं होते। वे भी अपने संगी साथियों को जो कुछ करते देखते हैं स्वयं वही करने लग जाते हैं इस लिये माता पिताओ को और बुजुर्गों को और समाज व जाति के हित चिन्तकों को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विद्यार्थी या नवयुवक कहाँ जाता है या किस स्वभाव के लोगो के साथ रहता है। अगर वह बुरी सुहबत मे बैठता है तो तुरन्त उसे रोक देना चाहिये और अच्छी संगति में लाने का यत्न करना चाहिये क्योंकि शुरू

में रोक थाम करने से या सत्संग कराने से वह शीघ्र सुमार्ग पर आजायगा, वरना वह न केवल अपने को ही गुमराह करेगा वल्कि वह अपने कुल, जाति, समाज व देश को भी कलङ्कित करेगा। इसी प्रकार अनक़रीब प्रत्येक मनुष्य पर उसके साथियो के आचार, विचार, रहन सहन, खानपान, और बातचीत इत्यादि का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार हमारे शरीर का संगठन हमारे भोजन, व्यायाम और जलवायु पर निर्भर है उसी प्रकार हमारे विचारों और व्यवहारों आदि का संगठन हमारी संगति और सामाजिक वातावरण पर निर्भर है।

यद्यपि हम भली प्रकार जानते है कि भारत का भविष्य हमारे नवयुवकों के हाथ मे है तथापि उनके बनाव बिगाड़ के सम्बन्ध में हमारा जो उत्तरदायित्व है उस पर पूरी तौर से ध्यान नही देते। हमे बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे नवयुवक विद्यार्थी जिन पर हमारे भविष्य की आशाएँ निर्भर है बुरी संगति मे पड़ कर पतन की ओर जा रहे है। अगर आप कुसंगति का प्रभाव देखना चाहते है तो आइये किसी कालेज या स्कूल के बोर्डिंग के विद्यार्थियो का अवलोकन करें। आप उनके कपड़े खुलवा कर देखे तो आप को मालूम होगा कि उनमे से क़रीब पचहत्तर फीसदी सिर्फ हड्डी के जानदार पीले रंग के पुतले है। इसका मुख्य कारण, जहाँ तक जाँच से मालूम हुआ है उनकी बुरी आदते हैं। वे आपस मे स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते जुलते है और अनुभव के अभाव वश बुरी आदतें ग्रहण कर लेते है, जिनकी वजह से अपने जीवन को नष्ट कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों और नवयुवको के लिये सुसंगति का चुनना बड़ा ही महत्वपूर्ण और कठिन काम है। महत्वपूर्ण इस लिये कि इसी पर भविष्य निर्भर है और कठिन इस लिये कि यह काम ऐसे समग्र

में करना पड़ता है जबकि अनुभव का बिल्कुल अभाव होता है। जिसके कारण ऊँच नीच का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है कि छोटे और मूर्ख लोगों की संगति से मनुष्य की बुद्धि खराब हो जाती है, समान स्थिति के लोगों के साथ रहने से बुद्धि समान रहती है और अच्छे और विद्वान् पुरुषो के साथ रहने से वही बुद्धि अच्छी हो जाती है। अतः जो विद्यार्थी नवयुवक व स्त्री पुरुष अपना सुधार और संसार मे अपनी उन्नति करना चाहते हैं तो उनका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वे अच्छे और विद्वान् लोगो की संगति करें और जो लोग अधिक चरित्र वाले, गुण वाले और सत्यवादी हो उनके साथ रहा करे। अच्छे लोगो की केवल संगति से पूरा पूरा काम नहीं निकल सकता वल्कि उनकी सभी अच्छी बातों पर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये और सदा उन्हीं के अनुसार व्यवहार करने का प्रयत्न करना चाहिये।

एक विद्वान् ने कहा है कि सत्संगति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, सत्यमार्ग बताती है, मान वढ़ाती है, पापो को दूर करती है, मन को सन्तुष्ट करती है और कीर्ति इत्यादि का प्रसार करती है। सच पूछिये तो सत्संगति मनुष्य के लिये क्या नहीं करती है?

आज कल लोग शिक्षा के महत्त्व को वहुत वखान करते हैं परन्तु सुसंगति के महत्त्व पर वहुत कम ध्यान दिया करते हैं। वास्तव मे सुसंगति का महत्त्व शिक्षा से कहीं वढ़ कर होता है। शिवाजी, राणाप्रतापसिंह, गुरुगोविन्दसिंह, लोकमान्य तिलक, मिस्टर गोखले आदि जितने महापुरुष और देश के नेता हुए हैं उन्होंने अपनी शिक्षा के वल पर ही देश की सेवा नहीं की है

वल्कि विद्वान्, त्यागी, साहसी व अनुभवी लोगो के सत्संग द्वारा अपने में बलिदान और त्याग का भाव उत्पन्न किया है।

कुसंगति द्वारा जो अभ्यास बाल्यकाल में पड़ जाते हैं वह उस संगति के न रहने पर भी बने रहते हैं। हमारे अभ्यास हमारे शरीर के अङ्ग बन जाते हैं और जिस प्रकार मनुष्य अपने हाथ पैरों को नहीं अलग कर सक्ता उसी प्रकार अभ्यास को नहीं दूर कर सक्ता। इसलिये ऐसी संगति को, जिसमे जूआ, मद्यपान, फिजूलखर्ची फैशन की दासता, सिगरेट आदि पीने के दुरभ्यास पड़ने की आशङ्का हो सदा त्याज्य समझना चाहिए। बुरे अभ्यास को जड़ से ही नाश करना चाहिये। अच्छे संस्कार बनाना चाहिए और कुसंस्कारों को अपने मे स्थान न देना चाहिए।

मैं अपने भाइयो, बहिनो और ख़ास कर युवक और युवतियो से आग्रह पूर्वक निवेदन करूँगा कि अगर उनको संसार मे एक आदर्श और शान्ति प्रिय जीवन व्यतीत करना है तो उन्हें यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे सदाचारी, अनुभवशील पुरुषों और विद्वानों की संगति करें। जिस प्रकार नाव के साथ लोहा तैर जाता है, पान के साथ ढाक का पत्ता राजा के हाथ पहुँच जाता है उसी प्रकार मामूली से मामूली आदमी अगर अच्छी संगति में रहे तो बहुत अच्छी अवस्था को प्राप्त हो सकता है।

सफलता के मूल साधन परिश्रम और साहस

किसी कार्य्य को सफल बनाने के वास्ते जो कोशिस की जाती है उसे परिश्रम कहते हैं और किसी कार्य्य को उत्साह पूर्वक करने का नाम साहस है। जिस प्रकार एक सुन्दर फूल विना सुगन्ध के शोभा नहीं देता, उसी प्रकार बिना साहस के परिश्रम शोभा को प्राप्त नहीं होता। परिश्रम मे साहस का होना मानों सुवर्ण में सुगन्ध का होना है। साहस सहित परिश्रम करने से मनुष्य अपने पूर्ण ध्येय को प्राप्त होता है। जो मनुष्य परिश्रमी नहीं है, उसका जीवन उसके लिये निराशामय और व्यर्थ है। जो परिश्रम नहीं करता वह कभी सुखी हो ही नहीं सकता। मनुष्य परिश्रम के द्वारा तमाम सफलताओं को प्राप्त कर सकता है। परिश्रम की आग में तमाम कुविचार जल जाते हैं और मनुष्य उसमें तपे हुए सोने की भांति खरा होकर निकलता है। बिना परिश्रम या कार्य किये हुये जीवन का यथार्थ उपयोग नहीं हो सकता। यदि हमारे पास विपुल सम्पत्ति हो और हमें संसार में किसी पदार्थ की कमी न हो तोभी जीवन का ठीक उपयोग करने और उसका वास्तविक सुख पाने के लिये यथा साध्य परिश्रम और कार्य करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। परिश्रम या कार्य करने में अपनी किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा समझना बड़ी भारी भूल और मूर्खता है। संसार में सुख के जितने

साधन हैं उन सबकी प्राप्ति परिश्रम या कार्य करने ही से होती है और जितने कष्ट है वे सब अकर्मण्य रहने ही से होते है।

सदाचार, कीर्ति और वैभव तीनों परिश्रम के ही फल हैं। जो मनुष्य निठल्ला होता है वह दुराचारी, नीच और दरिद्री हो जाता है। परिश्रमी लोग दूसरे देशोमे जाकर राज्य करते है और आलसी तथा अकर्मण्य या तो घर में पड़े पड़े कष्ट भोगते हैं या बाहर निकल कर ठोकरें खाते फिरते है। जिस जाति या समाज के लोग परिश्रम और कार्यशील रहते हैं वही जाति अथवा समाज उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचती है और जिस जाति व समाज के लोग कामचोर और निकम्मे होते हैं वह जाति व समाज नीचे गिरते गिरते अन्तमें नष्ट हो जाती है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि परिश्रमी जाति सदा स्वतंत्र, सम्पन्न और सुखी रहती है तथा निरन्तर उन्नति करतो रहती है और जिस जाति में अकर्मण्यता और आलस्य आ जाता है उसके पराधीन, दरिद्री और दुःखी होने मे अधिक विलम्ब नहीं लगता। भारतवर्ष को ही लीजिये। जिस समय यहां के निवासी प्राचीन आर्य परिश्रमी और कार्य-शील होते थे, उस समय यह देश विद्या, कला, धर्म और कीर्ति आदि मे अन्य देशों का गुरु और वैभव में मानो राजा था। चीन देश भी उसी समय उन्नति की चरम सीमा तक पहुंचा था, जब कि वहां के निवासी परिश्रम और कार्य का महत्व अच्छी तरह जानते थे। यूरुप की रोमन जाति जिस समय उन्नति के शिखर पर आरूढ़ थी उस समय उस जाति के लोगों मे परिश्रम का बड़ा मान था। बड़े बड़े वीर और योधा रण क्षेत्र से लौट कर हल जोतते तथा परिश्रम के दूसरे काम करते थे। पर जिस समय से भारतीयों, चीनियो और रोमनो ने परिश्रम को

अपमानजनक समझना आरंभ किया उसी दिन से उनका अधःपतन भी आरंभ होगया। आज अमेरिका, यूरुप आदि देश इस प्रकार उन्नति के शिखर पर पहुँच गये हैं इसका एक मात्र रहस्य यही है कि इन देशो के लोग साहस पूर्वक परिश्रम से काम ले रहे हैं और इसका फल यह है कि वे हर दिशा मे तरह तरह की उन्नति और नये नये आविष्कार कर रहे है। उन जातियो की तरह ऐसे व्यक्तियों के भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने निरन्तर परिश्रम और कार्य्य करते करते अच्छा यश और वैभव प्राप्त किया है। संसार में आपको एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा जिसमे आलस्य से ही यश तथा वैभव प्राप्त किया गया हो। हां! हजारों लाखों ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें उद्योग और परिश्रम करके लोग दरिद्र से सम्पन्न, मूर्ख से पण्डित, दुर्वल से बलवान और दुष्ट से साधु बन गये हों। एक डाल पर बैठ कर उसी को काटने वाले कालिदास महा कवि होगये, वीरवल और टोडरमल आदि साधारण स्थिति से निकल कर अकवर के प्रधान मंत्री बने। शिवाजी के समान एक साधारण स्थिति के मनुष्य ने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। नैपोलियन एक साधारण सिपाही से बढ़ कर प्रायः सारे यूरोप का स्वामी होगया। मि० जान हानवे एक सौदागर का नौकर लंदन का एक श्रेष्ठ धनी बन गया। यह सब परिश्रम का फल है।

हमारे देश में निर्धन घरोंमें उत्पन्न होने वाले नवयुवक अपना जीवन निस्सार और तुच्छ समझ बैठे हैं। उन्हे ऐसा भास होता है मानों निर्धनता उनका मार्ग रोके खड़ी है। उन्हें निर्धनता के आगे अपने सारे गुण व्यर्थ मालूम होते हैं। परन्तु और देशों मे यह बात नहीं है, निर्धनता उनमे आकांक्षा, साहस और उद्योग पैदा करती है।

एंड्रू कार्नेगी ने लड़कपन में एक जुलाहे की नौकरी की थीं फिर वे तार घर में चपरासी बने। क्रमशः इन्होने तार का काम सीखा और बाद में पेन्सिलवेनियाँ रेलवे कम्पनी मे सुपरिन्टेन्डेएट होगये। कुछ काल के बाद उन्होंने कुछ धन इकट्ठा किया। बाद में इस छोटी सी पूंजी से उन्होने एक कारखाना खोला और ज्यों ज्यो रुपया बढ़ता गया त्यो त्यो वे अपने कार्य्य को बढ़ाते गये यहां तक कि आज अमेरिका मे ही नही वल्कि सारी दुनियां में सर्वश्रेष्ट मालदारो में इनकी गणना होगई। इनकी आमदनी पन्द्रह हज़ार रुपये प्रतिदिन थी और उन्होने अपने जीवन में परोपकार के सम्बन्ध में लगभग पौने दो अरब रुपया व्यय किया है। लार्ड रीडिंग जो सन् १६२० से लेकर १६२६ तक भारतवर्ष के वायसराय रह चुके हैं एक मामूली ज्यू के पुत्र थे जो सब्जी और फल वगैरः बेचता था। इनका जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। अपने घर के धन्धे मे इनका मन नही लगा। इनकी इच्छा समुद्र पर काम करने की थी अतः वे एक जहाज़ पर केबिनबोय (Cabin boy) का काम करने लगे। कुछ समय बाद इनके पिता ने इन्हें एक जहाज़ की कम्पनी मे नौकर करा दिया और उस अवस्था में इन्हे सारी दुनियां का सफ़र करने का अवसर मिला। बाद में इनका जी यहां भी नहीं लगा तब इन्होंने स्टाक एक्सेचेञ्ज में कुछ धन पैदा करने का विचार किया पर वहां भी उनको कोई लाभ नहीं हुआ तब इनका इरादा अमेरिका में धन पैदा करने का हुआ। ये बिलकुल तैयार थे कि इनकी माता ने कहा कि बेटा तुम वकालत करने के लिये बहुत अच्छे हो। इन्होंने अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य्य किया और वकालत के लिये तैयारी करने लगे। सन् १८८७ ई० में सत्ताईस वर्ष की उम्र में इन्होने वकालत करना शुरू कर दिया और इस कार्य्य में इन्हें काफी

सफलता मिली, यहाँ तक कि लगभग तीस हज़ार पौण्ड वार्षिक कमाने लगे। ग्यारह वर्ष बाद इनका इरादा पार्लियामेण्ट में प्रवेश करने का हुआ और १६०४ में ये पार्लियामेण्ट के सदस्य चुने गये। सन् १६१० ई० मे आप सालिसिटर जनरल (Solicitor General) मुक़र्रर किये गये बाद मे एटार्नी जनरल (Attorny General) और सन् १६१३ में लार्ड चीफ जस्टिस बन गये। कुछ दिनो बाद ही आप ख़ास दूत बना कर (Special envoy) बतौर वैदेशिक मामलों के लिये विदेश सचिव (Secretary of State for foreign affairs U. S. A.) अमेरिका भेजे गये और थोड़े दिनों बाद ही हिन्दुस्तान के वायसराय बन कर हिन्दुस्तान आये। आप के निरन्तर परिश्रम का ही यह फल है कि एक छोटे कुल में उत्पन्न होकर इतनी बड़ी ख्याति और पदवी को प्राप्त किया।

निकम्मे रहकर समय नष्ट करना मानों अपना जीवन नष्ट करना है। लेकिन छोटे से छोटा सत्कर्म करना भी संसार का कुछ न कुछ कल्याण करता है। सफलता प्राप्त करने और प्रसन्न होने का संसार में यदि कोई उपाय है तो वह सच्चे हृदय से परिश्रमपूर्वक कोई उत्तम कार्य करना ही है। जगत के कल्याण के लिये, मानव जाति की उन्नति के लिये, अपनी आत्मा की शान्ति के लिये अपने आचरण के सुधार के लिये और अपना स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये भी सबसे अच्छा साधन किसी उत्तम कार्य में लगे रहना ही है। यह अक्सर देखा जाता है कि एक सप्ताह भर काम करने से उतनी थकावट नहीं आती जितनी एक दिन खाली रहने से आती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को सदा कुछ न कुछ करते रहना चाहिये। जो मनुष्य सच्चे हृदय से कोई काम करता है वह काम चाहे कितना ही निरर्थक क्यों न हो पर तो भी

उसका कुछ न कुछ शुभ परिणाम होता ही है। व्यर्थ बकवाद करने और निकम्मे बैठने की अपेक्षा कुछ काम करते रहना कहीं अच्छा है। एक विद्वान् का कहना है कि वाते पृथ्वी की कन्यायें हैं पर कार्य स्वर्ग के पुत्र हैं। अगर एक मनुष्य अपनी शक्तियों को किसी शुभ कार्य्य में नहीं लगाता है तो अवश्य ही उन शक्तियो का नाश हो जायगा। शक्तियों का क्या स्वय उस मनुष्य ही का नाश हो जायगा।

बिना परिश्रम किये उसका फल प्राप्त करने की इच्छा करना बड़ी भारी मूर्खता है। संसार में प्रत्येक वस्तु का कुछ न कुछ मूल्य हुआ करता है और वह मूल्य दिये बिना उस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। यदि किसी प्रकार मूल्य दिये बिना या परिश्रम किये बिना वह वस्तु हम प्राप्त भी कर लें, तो हम उसे कदापि रक्षित न रख सकेंगे। हमें उसकी कदर ही न मालूम होगी और उसे जल्दी ही खो बैठेंगे। पर यदि हम पूर्ण परिश्रम करके उसे प्राप्त करेंगे, मूल्य देकर कोई वस्तु लेगे तो अवश्य ही हम उसका उपयोग भी अच्छी तरह कर सकेंगे।

परिश्रम का महत्त्व इतना अधिक है कि संसार के सभी कामो में उसकी कुछ न कुछ आवश्यकता होती है। यदि हम केवल अपना शारीरिक सुख ही चाहें तो उसके लिये भी हमे किसी न किसी प्रकार का यत्न करने की आवश्यकता होती है। कार्य्य जितना ही बड़ा होगा उसके लिये उतने ही अधिक परिश्रम की आवश्यकता होगी। परिश्रम जितना ही अधिक किया जायगा उसका फल भी उतना ही अधिक और उत्तम होगा। जो मनुष्य, जाति वा समाज सुखी होना चाहते हैं उन्हे सदा परिश्रम करना चाहिये। काम करने में अनावश्यक शीघ्रता न करनी चाहिये।

एक कहावत है "जल्दबाज मुँह के बल गिरता है।" जल्दी का काम शैतान का काम होता है। दोनो ही बाते बिल्कुल ठीक है। जल्दबाजी भी किसी कार्य को उसी प्रकार बिगाड़ देती है जिस प्रकार सुस्ती।

मनुष्य को उचित है कि जो कार्य्य करे उस पर पूरा पूरा ध्यान दे और उसमे अपनी सारी शक्ति लगादे। अध्यवसाय पूर्वक किसी काम में लगा रहना ही सफल होने का सबसे बड़ा साधन है बल्कि यही जीवन का मूल मन्त्र है।

जो काम हाथ में ले, उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये और उसमें अच्छी तरह से जी लगाना चाहिये। वेगार टालने से कभी कोई काम अच्छी तरह से नहीं हो सकता। यदि किसी काम मे हमें कठिनाइयाँ दिखाई पड़ें तो हमे कदापि उनसे घवड़ाना नहीं चाहिये बल्कि बराबर दत्तचित्त होकर उसमें तल्लीन हो जाना चाहिये। हमें कोई भी कार्य हाथ मे लेने के पहले खूब सोच बिचार कर लेना चाहिये और जब किसी काम को हाथ में ले लिया तो चाहे जितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हों फिर भी हमें उस काम मे लगे ही रहना चाहिये जब तक कि वह पूरा न हो जाय। एक न एक दिन कोई उपाय ऐसा अवश्य ही निकल आवेगा जब हम अपने उद्देश्य मे सफलीभूत होंगे। उपाय सदा शान्त चित्त और परिश्रम करने से निकलता है न कि घवड़ाने और हताश होने से। कठिनाइयाँ और विघ्नों से घवड़ाना और हताश होकर किसी काम को बीच में छोड़ देना कायरता, दुर्बलता और अकर्मण्यता का लक्षण है।

परिश्रम और साहस के जरिये लोगों ने बड़े बड़े काम किये हैं। अमेरिका के अन्वेषण कर्ता प्रसिद्ध यात्री कोलम्बस को ही

लीजिये। उसके जीवन वृत्तान्त से हमे इस बात की अच्छी शिक्षा मिलती है कि साहस पूर्वक परिश्रम से एक मनुष्य क्या क्या कर सकता है। उसका जन्म सन् १४३६ ई० में एक बहुत ही दरिद्र कुल में हुआ था। वाल्यावस्था से ही मल्लाही के काम मे बहुत निपुण था। सन् १४७४ ई० में उसने पहिले पहल पश्चिमीय सागर द्वारा भारत यात्रा करने का बिचार किया। उसका विचार सुनकर वहुत से लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे पर वह हतोत्साह नहीं हुआ। पहिले उसने अपने जन्म स्थान जनेवा के राज्य दर्बार मे पहुँच कर अपने बिचार प्रकट किये और यात्रा के लिये सहायता माँगी परन्तु वहाँ पर किसी ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। लाचार होकर वह पुर्तगाल गया। पुर्तगाल के राजा ने कोलम्बस की बात मानली पर मंत्रियो ने इस विषय मे अपनी सम्मति नहीं दी। पुर्तगाल वालो ने उसके साथ बेईमानी की, उसके नक्शे आदि ले लिये। बाद मे वह स्पेन गया पर वहाँ भी उसकी सुनवाई नहीं हुई। इन सभी स्थानो से विमुख फिरने के कारण वह दुःखी और उदास होगया था पर तो भी अपने विचार में वह दृढ़ रहा और बहुत दिनो तक इधर उधर अपनी सहायता पाने की आशा में घूमता रहा।

उसे केवल भारत का मार्ग ढूंढ़ निकालने की धुन थी। अन्त में स्पेन के राजा ने उसके प्रस्ताव पर विचार करने के लिये उसे फिर अपने यहां बुलाया, फिर वह सन् १४९२ ई० में स्पेन गया और वहां उसकी सारी शर्तें मान लीगई और उसकी यात्रा का प्रबन्ध भी होने लगा। यात्रा के लिये उसे छोटे छोटे तीन जहाज मिले जिन पर नब्बे मनुष्य थे और एक वर्ष के लिये सामग्री थी। सन् १४९२ ई० के तीसरी अगस्त को वह रवाना हुआ। रास्ते में उसे भारी तूफान मिले और उसके साथी हताश होने लगे। यहां तक कि

उन्होंने यह विचार किया कि कोलम्बस को उठाकर समुद्र में फेक दें। उस अवस्था में यदि और कोई मनुष्य होता तो या तो वह स्वयं ही घवड़ा कर लौट पड़ता या कम से कम मल्लाहों के डर से आगे बढ़ने का विचार छोड़ देता। पर कोलम्बस मानों धैर्य्य और अध्यवसाय का जीता जागता पुतला था। वह स्वयं शान्त रहा और दूसरों को भी समझा बुझा कर शान्त रखता रहा। नतीजा यह हुआ कि उसने एक नये संसार का पता लगाया, उसे एक नया महाद्वीप मिल गया। अमेरिका का पता लग जाने से विज्ञान, विद्या और कला आदि में संसार ने कितनी उन्नति की है इसके यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं है। पर इस उन्नति का मूल कारण कोलम्बस का निरन्तर परिश्रम आर साहस ही था।

दान के क्षेत्र

संसार में जितने धार्मिक सिद्धान्त हैं जैसे अहिन्सा, दया, सत्य, ब्रह्मचर्य इत्यादि उनमें से दान भी एक मुख्य है। इसको हर समय में हर धर्मावलम्बियों ने अपनाया है। भिन्न भिन्न नामों से इसे सम्बोधित करते हैं—जैसे जैन और हिन्दू पुण्य के नाम से, इस्लाम ख़ैरात के नाम से, अंगरेज चैरिटी के (Charity) नाम से इत्यादि।

किसी प्राणी के कष्ट निवारण के हेतु या उसको आराम देने के ख्याल से जो चीज़ दी जाती है उसे दान कहते हैं। दान कई प्रकार से किया जाता है जैसे अन्न देकर, वस्त्र देकर, ठहरने का स्थान देकर, पानी की प्याऊ खुलवा कर इत्यादि। इसके अलावा जो प्राणी तक़लीफ़ मे हों उनकी सहायता करना, किसी मरते हुये या बध होते हुये जीव की रक्षा करना भी दान है, इस प्रकार के दान को जैन शास्त्रो मे अभय दान कहा है। इसकी बड़ी महिमा कही गई है। इसके अलावा विद्या पढ़ना या पढ़वाना या किसी को कोई आर्थिक सहायता देना भी दान कहा जाता है।

समयानुसार लोगों की दान में रुचि व प्रवृत्ति हुआ करती है। प्राचीन काल में रास्ते के किनारे कुये, बावड़ी खुदवाना, बग़ीचे लगवाना, धर्मशाला बनवाना और नदियों के किनारे घाट बनवाने इत्यादि को सत् दान समझा करते थे। थोड़े समय से जब रेल,

घोड़ा गाढ़ी और मोटर आदि का चलन होगया है तब से लोगों की रुचि इस ओर से हट कर दूसरी ओर चली गई, जैसे पाठशाला, स्कूल, कालेज, गुरुकुल, छात्रालय खुलवाना, छात्रवृत्ति देना, पुस्तकालय खुलवाना, अनाथालय, अस्पताल, औषधालय, विधवा-आश्रम खुलवाना, अकाल और बाढ़ के समय लोगो की हर प्रकार की सहायता करना इत्यादि। इसके अलावा बहुत से भिखमंगे जो सड़को पर टहला करते हैं या बहुत से भिखारी स्त्री पुरुष नाना प्रकार का चिट्ठा करते फिरते हैं—जैसे कोई कहता है कि मुझे मन्दिर या कुआ बनवाना है, कोई कहता है कि मेरी पुत्री का विवाह है, कोई कहता है कि मुझे द्वारिका या जगन्नाथपुरी जाना है, कोई कहता है कि मुझे होम या भंडारा कराना है, कोई कहता है कि मुझे असुक इलाज के लिये अमुक स्थान पर जाना है इत्यादि। यानी यों कहना चाहिये कि ये लोग इस प्रकार की अजीब व ग़रीब दास्तान बनाते हैं कि लोगो को मजबूरन कुछ न कुछ देना ही पड़ता है, इसे भी वे दान कहते है।

इसके अतिरिक्त स्थानीय या बाहर की संस्थाओं के जैसे अनाथालय, गुरुकुल, विधवाश्रम, हिन्दू सभा इत्यादि के चिट्ठे आया करते हैं उनमें भी लोग दान देते हैं। इसके अलावा बहुत से लोग सदाव्रत बटवाते हैं या जाड़ो में वस्त्र दान करते है या गर्मी में प्याऊ खुलवाते हैं।

अब हमको यह जानना जरूरी है कि धन का दान से कितना सम्बन्ध है।

आज कल प्रायः यह देखा जाता है कि दान विशेष कर धन द्वारा ही किया जाता है। इसके साथ साथ हम यह भी जानते हैं कि अधिक तर लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं, इसके अलावा लोगों की रुचि दान की ओर बहुत कम होगई है।

कोई भी संस्था हो, चाहे अनाथालय चाहे स्कूल, विधवाश्रम हो या गौशाला या गुरुकुल हो उसके प्रबन्ध के वास्ते एक प्रबन्ध कारिणी कमेटी होती है। जिस संस्था के संस्थापक या कार्यकर्त्ता, आत्म-त्यागी, सच्चे और अनुभवी पुरुष होते हैं उनका प्रबन्ध अच्छे ढंग से चलता है यानी जो रुपया दान दाताओं से आता है उसका सदुपयोग होता है। अगर जनता की ढीली पोल से या स्वार्थी लोगों की चालाकी से दोस्त लोग कार्यकर्त्ता बन बैठते हैं तो दान के रुपये का दुरुपयोग होता है और परिणाम यह होता है कि या तो संस्था एक बहुत बुरी अवस्था को पहुँच जाती है या टूट जाती है। इसके अलावा कुछ धूर्त और स्वार्थी लोग नाम मात्र के वास्ते संस्थायें खोलते हैं और जनता से द्रव्य के वास्ते अपील निकालते हैं, बाहर इधर उधर मे जाकर रुपया वसूल करके लाते है और उसको मन माने तरीक़े से ख़र्च करते हैं। ऐसी संस्थाये अक्सर बड़े बड़े शहरो में पाई जाती है।

जहाँ देखो वहाँ भिखारियो के झुण्ड के झुण्ड दिखलाई पड़ते हैं इनके अलावा चिट्ठे व चन्दे करने या फेरी फिरने वाले प्रायः देखे जाते है। यद्यपि प्रति दिन सैकड़ो हजारो रुपये के चन्दे चिट्ठे हुआ करते है और भिखारियो को मिला करते है तथापि इन लोगो की संख्या मे कोई कमी नज़र नही आती बल्कि दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। अब से दश पन्द्रह वर्ष पहले जितने भिखारी या ढोंगी थे अब उन से दुगुने तिगुने होगये हैं। जब तक सड़क पर फिरने वाले ढोंगियो को सदाव्रत और द्रव्य मिलता रहेगा इनकी संख्या कदापि कम न होगी। इन पर जो रुपयो ख़र्च किया जाता है वह कदापि दान नहीं हो सकता वह कुदान है। इससे पुण्य नही बढ़ता उल्टा पाप बढ़ता है। लोगो को श्रम, संयम और साहस से घृणा होती है और आलस्य तथा

असंयम से प्रेम होता है। हमारे भारत वर्ष में भी मांगना एक पेशा होगया है। यहां तक कि भिखमंगो की संख्या बासठ लाख से भी अधिक है। आठ आठ या नौ नौ वर्ष के बच्चे भी दूसरो की देखा देखी भीख मांगने लगते हैं। यदि यह लोग कुछ काम करते तो संसार को कितना लाभ होता।

इसके अलावा हिन्दुओं और खास कर जैनियों में मनुष्यो की रक्षा के अलावा पशु पक्षियों की जीव रक्षा की जाती है। इनके हेतु बहुत सी संस्थायें खोली जाती हैं जैसे जीव दया सभा, जीव रक्षा प्रचारिणी सभा, गौशाला, पिंजरापोल, इत्यादि सभाओं द्वारा शक्तिउपासको में जीव बलिदान की विरुद्ध प्रथा मिटाने के लिए अहिंसा वृत्तिके त्यागके लिए धींमरो व बहेलियोको तथा वधिकों आदि को उपदेश दिया जाता है और कसाइयों से गौ आदि पशु खरीद खरीद कर, चिड़ीमारों से कबूतर, तीतर, बटेर और मोर आदि खरीद कर ऐसे स्थानो में या रियासतों मे छुड़वाये जाते हैं, जहां कि वे फिर पकड़े न जा सकें। इस प्रकार जीवों की रक्षा करने को जैन धर्म मे अभय दान यानी प्राण दान कहा है। अगर इन संस्थाओं के कार्य्यकर्त्ता आत्म त्यागी, सच्चे और अनुभवी पुरुष होते हैं तो दान के रुपये का सदुपयोग होता है और कहीं स्वार्थी व्यक्ति कार्य्यकर्त्ता हो जाते हैं तो बजाय जीव रक्षा के वह अपनी स्वार्थ रक्षा करते हैं और इस प्रकार रुपये का दुरुपयोग होता है।

भारत वर्ष एक बड़ा देश है जिसके किसी न किसी हिस्से में प्रति वर्ष अकाल पड़ा करता है और बाढ़ आया करती है, जिस के कारण सैकड़ों हजारों नहीं, बल्कि लाखों स्त्री पुरुष और बच्चे अन्न वस्त्र तथा गृह-विहीन हो जाते हैं। ऐसे लोगों की सहायता की अत्यन्त अवश्यकता हुआ करती है। ऐसे स्थानों पर गवर्नमेण्ट

भी कुछ इमदाद करती है पर वह प्रायः नहीं के बराबर होती है। पर अब कुछ समय से कुछ सहृदय लोग ऐसे अवसरों पर अपना कर्त्तव्य समझ कर अस्थायी संस्था खोल देते हैं जिनके द्वारा जनता से रुपये की अपील करते हैं और इस प्रकार अकाल और बाढ़ पीड़ितो की मदद की जाती है। पर सवाल वही रहता है कि अगर कार्यकर्त्ता अच्छे होते हैं तो रुपये का सदुपयोग होता है वरना अधिकतर दुरुपयोग।

इसलिये दान देने से पूर्व दाताओं को यह जान लेना निहायत जरूरी है कि जिस संस्था को वे दान दे रहे हैं उसके कार्यकर्त्ता कौन कौन और कैसे आदमी है। अगर वे समझते हैं कि संस्था उपयोगी है और कार्य्यकर्त्ता सच्चे और आत्मत्यागी पुरुष हैं तो अवश्य दान दे। ऐसा करने से दान-दाता को और संस्था के कार्य्यकर्त्ताओ को सन्तोष होता है।

सब धर्मों और महान पुरुषों ने यह कहा है कि द्रव्य का सदुपयोग दान है। जिस प्रकार विना आत्मा के एक मुर्दा शरीर त्याज्य और अरुचिकर प्रतीत होता है उसी प्रकार यदि एक धनी जिसके पास द्रव्य है लेकिन वह उसके कुछ हिस्से का सदुपयोग नहीं करता है अर्थात् दान में नहीं लगाता है, तो वह अपनी जाति, समाज और देश के वास्ते मृतक शरीर के तुल्य है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य को और खास कर धनियों को अपनी आमदनी का एक अच्छा हिस्सा सदुपयोग अर्थात् दान में लगाना चाहिये।

कुछ वर्ष पूर्व ज्यादातर लोग धार्मिक रूप से अपना यह कर्त्तव्य समझा करते थे कि उनको अपनी भविष्य की गति.

सुधारने के वास्ते दान करना अत्यन्त आवश्यक है। उसी के अनुसार हजारों नहीं, लाखो रुपया धर्म्म कार्य्यों मे लगाया जाता था, अब भी लोग धार्मिक ख्याल से अथवा अपना कर्त्तव्य समझ कर काफी रुपया दान में देते हैं परन्तु पूर्वकाल और वर्तमान काल के दान के तरीक़े और ढंगों में बहुत परिवर्तन होगया है जैसा कि मैं ऊपर आपको बता चुका हूं। हम अपने प्राचीन ग्रन्थो में राजा हरिश्चन्द्र और दधीचि और भगवान् महावीर के वर्षी दान के बारे में पढ़ते चले आते हैं। इन लोगो ने अपना समस्त राज्य पाट और शरीर तक दान मे दे दिया और भगवान् महावीर ने दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले नित्य प्रति दिन लाखो सुनइयो अर्थात् मुहरो का दान किया। अब वर्तमान समय में भी हमारे बड़े बड़े राजा महाराजा और सेठ साहूकार हजारों का नहीं, लाखो रुपये का दान समय २ पर निकाला करते हैं। हिन्दू विश्व विद्यालय के लिये महामना मालवीय जी को और तिलक स्वराज्य फण्ड के वास्ते महात्मा गान्धी को भारतवर्ष के राजे, महाराजाओ, धनियों और आम जनता ने करोड़ो रुपये का दान दिया।

अमेरिका आदि पाश्चात्य देश के धनी हजारो लाखों नहीं, बल्कि क़रोड़ों और अरबो रुपये सार्वजनिक उपयोग के कार्यों मे दान देते हैं, कुछ समय हुआ कि अमेरिका के एंड्रू कार्नेगी ने जो दुनियां के धनियों में सब से बड़े आदमी समझे जाते थे, दान मे एक अरब पचहत्तर करोड़ रुपया दिया था। हमारे यहां के राज्य और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग यदि इनके उदाहरण से कुछ शिक्षा ले तो अच्छा है। उन्हें यथावत अपनी आमदनी में से काफ़ी रुपया दान के वास्ते निकालना चाहिये।

इस बात पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में किस कार्य्य मे और किस तरीक़े से दान में धन को लगाना चाहिये जिससे उसका पूर्ण सदुपयोग हो। मेरे विचारानुसार तो दान देने वालों को और दान लेने वाली संस्था के कार्य्यकर्त्ताओ को इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि जो धन दान में प्राप्त हो उसको इस प्रकार से खर्च करें कि जिससे ग़रीबी और दरिद्रता की जड़ कटे अर्थात् ज़रूरत वाले की ज़रूरत सदा के वास्ते रफा हो जाय। उदाहरण लीजिए:—

(१) एक अनाथ लड़का है उसके खाने कपड़े के प्रबन्ध के अलावा यह प्रबन्ध किया जाय कि वह विद्या पढ़ जाय या कोई हुनर अथवा दस्तकारी सीख जाय जिससे कि वह भविष्य में अपनी जीविका पैदा कर सके।

(२) कोई विधवा है उसे जीविका की आवश्यकता है बजाय इसके कि उसकी धन से मदद की जाय, उसको कोई ऐसी दस्त-कारी या हुनर सिखाया जाय कि भविष्य मे वह अपनी जीविका उपार्जन कर सके।

(३) कोई गृहस्थ है उसे सहायता की आवश्यकता है उसकी धन से मदद करने के बजाय उसका किसी ऐसे धन्धे या रोज़गार में लगाना चाहिये कि उसकी भविष्य की चिन्ता हट जाय।

(४) कोई विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहता है तो बजाय इसके कि उसको दान दिया जाय यह मुनासिब है कि उसको कर्ज़ दिया जाय और साथ साथ उसकी जान का बीमा करा दिया जाय और जब वह शिक्षा प्राप्त कर ले तथा कार्य्य में लग जाय तब माहवारी क़िस्त से कर्ज़ अदा कर लिया जाय। इस

प्रकार से असल रुपया सुरक्षित रहेगा और विद्यार्थी पढ़ जायगा।

अब प्रश्न इस बात का उठता है कि अगर कोई व्यक्ति दान करना चाहता है तो वह किन कामों में दे। मेरे तुच्छ विचारानुसार निम्न लिखित बातों में दान देना चाहिये।

(१) आज कल भारतवर्ष में अज्ञानान्धकार फैला हुआ है उसके हटाने के उपायो में अर्थात् विद्या प्रचार सम्बन्धी बातों में दान देना चाहिये।

(२) अनाथों तथा विधवाओ को विद्या पढ़ाना चाहिये तथा कोई दस्तकारी या हुनर सीखने मे उन्हें लगाना चाहिये।

(३) जो निरपराधी मूक पशु या पक्षी मारे जाते हों या वध किये जाते हों उनकी जान की रक्षा करनी चाहिये।

(४) जो संस्थाएं सार्वजानिक हों, जिनसे जाति या समाज का हित होता हो जैसे राष्ट्रीय महासभा, चरखा संघ इत्यादि, उनकी इमदाद करनी चाहिये।

(५) जिन महापुरुषों ने अपना जीवन जाति, समाज अथवा देश सेवा के लिये अर्पण कर दिया है और अगर उनके जीविका का माकूल प्रबन्ध नहीं है तो गुप्त रीति से प्रेम पूर्वक उनकी सहायता करते रहना चाहिये।

(६) अकाल या बाढ़ पीड़ितों की सहायता करनी चाहिये।

(७) अगर कोई प्रतिष्ठित गृहस्थ किसी प्रकार से मुसीबत में आगया हो तो गुप्त रूप से उसकी सहायता करते रहना चाहिये।

(८) जिन जिन संस्थाओं का कार्य्य तथा प्रबन्ध उचित और सन्तोषजनक हो उनकी सहायता करते रहना चाहिये, जैसे स्कूल गुरुकुल अनाथलय, 'विधवाश्रम, पुस्तकालय और बाचनालय इत्यादि।

यह बात नहीं है कि सिर्फ धनी लोग ही अपने धन द्वारा दान कर सकते हो पर जो निर्धन हैं या जिनकी आत्मा में दूसरों के प्रति सहानुभूति और प्रेम है वह भी अपने शरीर तथा वचनों से दान रूपी सेवा तथा परोपकार कर सकते है। कितने ही व्यक्ति ऐसे हो गये हैं जिनके पास धन का नाम भी न था परन्तु परोपकार में वे लखपती और करोड़ पतियों से भी बढ़ गये हैं। ऐसे लोगों की इतिहास में कमी नहीं। प्रत्येक युग, काल और प्रत्येक देश में ऐसे आत्माओं ने जन्म लेकर अपने सदुपदेश तथा बाहुवल से संसार का उपकार किया है। वाट, न्यूटन, आचार्य हेमचन्द्र, कवीर, रामदास, तुकाराम, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सर सैयद अहमद और दयानन्द सरस्वती आदि इन्हीं महापुरुषों में से थे।

इसके अलावा बहुत से नवयुवक, विद्यार्थी व मनुष्य अपने शरीर से अकाल व बाढ़ पीड़ितों को सहायता पहुँचाते हैं या जब कभी प्लेग, हैजा, मरी आदि बीमारियाँ फैलती हैं तो लोग बीमारो की सेवा शुश्रुषा करते है और यहाँ तक देखा गया है कि अक्सर सेवा करते हुये ये लोग भी उस मरी के शिकार बन जाते हैं। यह सेवादान उन धनियों के दान से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा दान है। यह ऐसा दान है जिसकी उपमा नहीं है। स्वराज्य प्राप्ति में कभी २ ऐसा देखा गया है कि एक नही, दस नहीं बल्कि सैकड़ों नवयुवकों ने स्वराज्य के लिये अपनी जान तक न्यौछावर कर दी है जिनका नाम सदा के वास्ते अमर होगया है।

दान करना अर्थात् परोपकार करना मनुष्य के सबसे बड़े उत्तम गुणो में से एक गुण है। इस लिये मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि जिस प्रकार से होसके उस प्रकार प्रणीमात्र की तन, मन, धन से सेवा करता रहे। जो और कुछ नहीं कर सकते कम से कम इतना तो अवश्य करें कि वह दूसरे के प्रति बुरा भाव न रक्खे और कभी किसी का अहित न चाहें।

ऋण का दुष्परिणाम और उससे बचने के उपाय

किसी मनुष्य से रुपया उधार लेने को कर्ज़ कहते हैं। अगर वास्तव मे देखा जाय तो संसार में कर्ज़ लेने से बढ़कर कोई भी बुरी चीज नहीं है। विद्वानो और आदर्श पुरुषो का कथन है कि भूखों मरना अच्छा है परन्तु कर्ज लेकर पेट भरना अच्छा नहीं। कर्ज़दार पुरुष भीरु हो जाता है। उसे किसी के सामने अपनी सम्मान रक्षा करना दुर्लभ हो जाता है। कर्ज़दार की सदा नीची निगाह रहतो है।

जब लोग कर्ज़ लेते हैं तब वे यह नहीं जानते कि हम कर्ज़ लेकर अपने को किन किन दुःखों और आपत्तियों मे डाल रहे है। चाहे किसी काम के वास्ते कर्ज़ लिया जाय जब तक वह चुक नहीं जाता, चक्की के पाट की तरह कर्ज़ लेने वाले के गले में लटका रहता है, एक पल के वास्ते उसे आराम नहीं मिलता। रात को सोते हुये भी भूत की तरह से उसकी छाती पर कर्ज़ सवार रहता है। वह कभी भरपेट भोजन नहीं करने देता है। कर्ज़ क्या लिया मानों अपने को बन्धनों में डाल लिया और सारे घर गृहस्थी के सुखों को खो दिया। वह सदा चिन्तित रहता है, यहाँ तक कि वह जीवन को भार स्वरूप बना देता है। अक्सर ऐसा

देखा गया है कि वाज़ वाज़ समय तो कर्जदारों को दुख और लज्जा से आत्म-हत्या तक कर लेनी पड़ती है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है, जिनकी अच्छी खासी आमदनी है वे भी कर्ज़ के भार से वर्षों दबे रहते हैं। न जाने यह रोग कैसा है कि पीछा नहीं छोड़ता; कैसा भूत है कि चढ़ कर उतरना नहीं जानता। असल में कोई क्या चुकावे जब व्याज चुकाने और रूखा सूखा खाने और मामूली कपड़े पहनने के बाद कुछ बचता ही नहीं।

जिनके यहाँ बड़ी बड़ी रियासतें और जागीरें हैं वे भी प्रायः जब एक दफा कर्ज लेते हैं तो फिर सदा के लिये ऋण ग्रस्त हो जाते हैं। उनका कर्ज़ा कम होने के स्थान में उल्टा दिनों दिन बढ़ता ही जाता है और थोड़े ही दिनों में जागीर की हैसियत से भी बढ़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जागीरें हाथ से निकल जाती हैं और जो लोग कल बड़े बड़े अमीर और जागीरदार कहलाते थे वे आज निर्धन और दुःखी बन जाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि लोगों को कर्ज़ क्यों लेना पड़ता है उसके निम्नलिखित मुख्य कारण हैं:—

(१) जब एक मनुष्य अपनी आमदनी से अधिक ख़र्च करता है तो उसे कर्ज़ लेना पड़ता है। एक अपव्ययी मनुष्य सदा ज़रूरत और वे जरूरत की चीज़ें ख़रीद लिया करता है और अक्सर वह उधार लिया करता है। इससे उसको सवाये, ड्योढ़े और दूने दाम देने पड़ते हैं क्योंकि अपव्ययी पुरुष सदा रुपये का भूखा रहता है, उसके अलावा वह अपने यार दोस्तों की दावत किया करता है, अपनी आमदनी और ख़र्च का कोई हिसाब भी

नहीं रखता है। वह सदा इस फ़िक्र में रहता है कि कहीं से किसी प्रकार किसी सूद पर रुपया आवे।

(२) प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बहुत से लोग कुरीतियों के पञ्जे मे फँस कर कर्ज़ से दबे रहते हैं। जैसे पुत्र या पुत्री की शादी का सम्बन्ध किसी बड़े आदमी से होगया तो अपनी बात और आडम्बर रखने के वास्ते वह अपने वित्त से कहीं अधिक रुपया ख़र्च कर देता है। इसके अलावा अगर कहीं पिता या माता की मृत्यु होगई तो मजबूरन बिरादरी की मर्यादा के अनुसार या अपनी बात ऊँची करने के ख्याल से वह बड़ी धूम धाम से बेखटके कर्ज़ लेकर नुकता या तेरही करता है। भारतवर्ष में जेवर बनवाने की प्रथा बहुत प्रचलित है। इससे हमारे देश को जो आर्थिक हानि हो रही है वह इसी से मालूम हो सकती है कि किसी भी चीज़ में, यदि वह सोने की हुई तो दो रुपये से लगाकर चार रुपये तोले तक और यदि चांदी की हुई तो दो आने से चार आने तोले तक, तो घाटा उसी समय हो जाता है जबकि वह चीज़ बन कर ही आती है। इसके अतिरिक्त प्रति माह ब्याज और छीजन की हानि होती है वह अलग।

(३) अक्सर बहुत से मनुष्य बुरी संगत में पड़कर शराब पीना और ऐय्याशी करना सीख जाते हैं। जब तक उनके पास पैसा होता है तब तक खूब ख़र्च करते हैं। और जब पैसा निबट जाता है तो कर्ज़ लेकर ख़र्च करते हैं। यहाँ तक कि उन पर नालिशें होने लगती हैं और तमाम जायदाद और माल असबाब नीलाम हो जाता है। यहाँ तक भी देखा गया है कि बहुत से व्यक्ति जो बेशर्म होते हैं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए झूठे दस्तावेज़ लिखकर या धनिकों को धोखा देकर रुपया वसूल करते हैं और नतीजा

यह होता है कि सारी ज़िन्दगी जेल में बितानी पड़ती है और उनमें जो एक दो शर्मदार होते हैं वे तो आत्महत्या तक कर लेते हैं।

(४) ज्यादातर मनुष्य व्यापार और व्यवसाय के वास्ते रुपया कर्ज़ लेते है इनमें से जो व्यापार का अनुभव रखते है वे तो उसका रुपया व ब्याज निकाल देते हैं पर जो नौसिख या अनुभवहीन होते हैं, वे ब्याज का निकालना तो दूर रहा, सारी रक़म बराबर कर देते है। अक्सर ऐसा देखा गया है जो दूकानदार हज़ार रुपये का रोजगार कर सकते हैं वे दो चार हज़ार का नफा नुक़सान कर डालते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि वे सदा के वास्ते कर्ज़ से दब जाते हैं या उन्हे अपना काम फेल करना पड़ता है अर्थात् दिवालिया होना पड़ता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब कर्ज़ ऐसी बुरी चीज़ है तो हमें इससे बचने के लिये क्या करना उचित है और किस तरह हम अपनी स्वाधीनता व प्रतिष्ठा सुरक्षित रख सकते है। इसका केवल एक उपाय है कि हमे अपने वित्त के अनुसार ख़र्च करना चाहिये अर्थात् आमदनी से एक पाई भी बेशी नहीं ख़र्च करना चाहिये। हम लोगो मे ज्यादातर इसी बात की कमी है कि हम लोग अपनी आमदनी व ख़र्चे का हिसाब नही रखते, जितना चाहे उतना उधार लेकर ख़र्च किये जाते हैं। झूठे नाम और दिखलावे के वास्ते कितना ही रुपया फिज़ूल कामों मे बर्बाद कर डालते हैं जिससे कोई भी लाभ नहीं होता। हम अपनी मूर्खता से समझते हैं कि सजधज से रहने और लोगों को दावतें खिलाने से नाम होता है पर यह भूल की बात है। एक विद्वान् का कहना है कि मूर्ख खिलाया करते हैं और चतुर खाया करते हैं।

हमें कोई चीज़ कदापि उधार न लेनी चाहिये और साथ २ दूकानदारों को भी कोई चीज़ उधार न देनी चाहिये। उधार में

कुछ ऐसा जादू है कि बिना जरूरत की भी चीजें ले ली जाती हैं। यह ख़याल कि कौन दाम नक़द देते हैं, फिर दे देंगे, उधार ही हमारी बहुत सी फिजूल खर्चियों का कारण होता है। इस कारण जहाँ तक हो वहाँ तक उधार लेना बन्द कर देना चाहिये। जब दाम न होंगे तब खुद ही चीज़ न लेंगे।

मेरे विचारानुसार हर गृहस्थ को निम्नलिखित बातों पर सदा ध्यान रखना चाहियेः—

(१) सदा मितव्ययिता से रहना चाहिये।

(२) अपनी आमदनी व ख़र्च का हिसाब रखना चाहिये।

(३) कभी कोई वस्तु बिना ज़रूरत नहीं ख़रीदनी चाहिये।

(४) झूठे नाम और दिखावे के वास्ते फ़िजूल रुपया नहीं ख़र्च करना चाहिये।

(५) कभी कोई चीज़ उधार नहीं लेनी चाहिये।

(६) सदा आमदनी से ख़र्च कम करना चाहिये अर्थात् कुछ न कुछ अवश्य बचाते रहना चाहिये।

(७) ऋण पूरा चुकाने की कोशिश करिये। ऋण शेष, रोग शेष और अग्नि शेष बड़े दुखदायी होते हैं। ऋण को बढ़ने देने से ज़ेवर या जायदाद बेचकर ऋण चुका देना अत्यन्त श्रेयसकर है।

जो मनुष्य निर्धन है पर उसको किसी का कर्जा नहीं देना है वह लाख दर्जे अच्छा व सुखी है व मुकाबिले उस लखपती के जो कर्ज़े से दबा हुआ है। इसलिये अगर हम लोग सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हम लोगो को सदा क़र्ज़े से दूर रहना चाहिये।

किसी व्यक्ति के विषय में एकदम मत निश्चित करलेना अनुचित है।

किसी भी व्यक्ति की परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है, जैसे उसके साथ रहने से, बात चीत करने से, साथ में सफर करने से, उसके बारे मे कुछ पढ़ने से या किसी आदमी से बात चीत करने से जो उसके साथ रहता हो इत्यादि।

किसी व्यक्ति से सिर्फ एक मौक़े पर बातचीत करने से या बर्तनेसे इसके बारे में फ़ौरन राय क़ायम नही कर लेनी चाहिये।

मान लो कि कोई मनुष्य किसी चिन्ता या दुःख में बैठा हुआ है और कोई व्यक्ति उसके पास जाकर अपनी इच्छा जाहिर करता है। उसके उत्तर में उस समय वह यह कह देता है कि इस समय मुझे माफ कीजिये। इससे अगर इच्छा जाहिर करने वाला यह ख़्याल करे कि वे बड़े आदमी हैं और घमण्ड के मारे बात नहीं करना चाहते और इस प्रकार वह अपनी राय क़ायम करलें तो क्या यह उचित है? इस लिये प्रत्येक विचारशील मनुष्य को समझ सोचकर राय निश्चित करनी चाहिये।

किसी आदमी के गुण या अवगुण उसके जीवन के केवल एक अंग को लेकर नहीं जाने जा सकते। मनुष्य की परीक्षा प्रायः

उसके घरेलू (Private) और सार्व जनिक जीवन (Public life) दोनो को दृष्टि गोचर रखने से हो सकती है । संभव है कि उसके नौकर चाकर, घर के दूसरे सदस्य या स्त्री इत्यादि जो राय उसके बारे में रखते हों उसमें और लोगो की राय में जो उसके साथ व्यापार आदि में सम्बन्ध रखते हैं अन्तर है । मनुष्य की मनोवृत्ति को जानना बड़ी जटिल समस्या है । उसका स्वभाव किस समय किस बात से प्रेरित होकर क्या करेगा साधारणतः यह बतलाना कठिन है ।

लार्ड राबर्ट थे तो बड़े बहादुर सेनापति, पर बिल्ली से डरते थे । उन्हें बिल्ली से डरते देखकर कौन कह सकता था कि वे एक बड़े साम्राज्य के सेनाध्यक्ष हैं परन्तु थे वे ऐसे प्रबल सैनिक जिनका लोहा उनके बहुत से प्रतिद्वन्दीं लोगो को मानना पड़ा था । इसलिये किसी की एक कमज़ोरी देखकर उसके सारे जीवन पर लाच्छन न लगाना चहिये ।

एक दिन सभा मे एक सज्जन का एक मित्र से बाद विवाद होगया । पाँच छः दिन बाद वे सड़क पर मिले और सामना बचाते हुये बग़ल से निकल गये । उन्होने सोचा कि वे उसदिन की बहस से अप्रसन्न होगये हैं इसी लिये बोले नहीं परन्तु दोही दिन बाद मालूम हुआ कि उस दिन उनकी बहिन का देहान्त होगया था इस लिये परेशानी की हालत मे वे बग़ल से बिना बात चीत किये ही निकल गये थे । इसके बाद जब वे मिले तो उन्होने पूर्व-वत् स्नेह प्रगट किया । इस लिये अगर कोई इस प्रकार की घटना होजाय तो हमें उसे उदारता की दृष्टि से देखना चाहिये । आज कल प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो मनुष्य फिज़ूल खर्च होता है उसे फ़ैय्याज दिल और जो फिज़ूल खर्ची नहीं करता अर्थात् मितव्ययी होता है उसे कंजूस कहते है ।

एक समय का जिक्र है कि एक समाज विशेष का डेप्यूटेशन एक फैय्याज़ दिल अमीर के पास गया और कालेज के वास्ते चन्दा माँगा इस पर उन्होने फ़रमाया कि मेरे पास इस क़दर ख़र्च है कि मैं कोई माकूल रक़म नहीं दे सकता। बाद में डेप्यूटेशन एक मित्त-व्ययी पुरुष के पास गया और चन्दा माँगा, उस समय वह सज्जन सिगरेट सुलगा रहे थे उन्होने सिगरेट सुलगा कर जो दिया सलाई की आधी लकड़ी बची उसे दिया सलाई के वक्स में रखदिया। डेप्यूटेशन के लोगो ने इससे अन्दाज़ लगाया कि जब यह इतने लोभी हैं तो हमको क्या दान देंगे । लेकिन जब डेप्यूटेशन के लोगो ने उनसे दान के वास्ते प्रार्थना की तो उन्होने चेक उठा कर सामने रखदी और कहा कि आप कहें जितनी रक़म भर दीजाय । डेप्यूटेशन ने इसको महज़ मजाक़ समझा और अपने ख्याल मे एक बहुत बड़ी रक़म ५०००) रु० की माँगी। मितव्ययी सज्जन ने फ़ौरन् चेक काट कर दे दिया। इस पर उन लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपनी ग़लतफ़हमी दूर करने के वास्ते अपना सन्देह उन्हे बताया तब उन्होंने कहा कि मैं फ़िजूल एक पैसा ख़र्च करना बुरा समझता हूँ क्यों कि इस प्रकार थोड़ा थोड़ा बचाने से बहुत इकट्ठा होजाता है जिसको सत्कार्य्य में लगाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

अगर कोई पिता अपने ऐसे पुत्र को जो ढंग से नहीं रहता और ऊधम और दंगे के सिवा कुछ पढ़ता लिखता नहीं है धमकाता या पीटता है तो क्या उसको निर्दयी कहना उचित है ?

अगर एक अध्यापक अपने ऐसे शिष्य को जो खेल के अलावा पढ़ने में ध्यान नहीं देता अगर ढंग में लाने के ख्याल से पीटे तो क्या उसको हृदयहीन कहना उचित है ?

अगर एक न्यायाधीश एक क़ातिल को प्राण दण्ड देता है तो क्या उसे क़साई कहना उचित है ?

पिता, अध्यापक और न्यायाधीश को पीटते या दण्ड देते देखकर यह कह देना कि ये बड़े निर्दयी हैं यह अनुचित है क्योंकि इन लोगों का उद्देश्य पीटना या दण्ड देना नहीं है बल्कि उनके जीवन को सुधारना है।

हम यह मानते हैं कि वर्तमान समय में बच्चो, शिष्यों, अवगुण करने वाले मनुष्यो को पीटना या दण्ड देना सर्वथा अनुचित कहा जाता है क्योंकि पीटने के बजाय प्रेमपूर्वक शिक्षण देना कहीं अच्छा और उपयोगी साबित हुआ है।

आज कल प्रायः ऐसा देखा जाता है कि किसी ने किसी के बारे में कोई बात देखी या सुनी तो फौरन अपनी राय क़ायम कर ली। ऐसा करना अनुचित है। उचित तो यह है कि पहले इसके कि हम किसी निश्चय पर आवें, हमको काफ़ी विचार कर लेना चाहिये। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बहुत से स्वार्थी लोग अपने नीच मन्तव्यो को पूरा करने के अर्थ या किसी को बदनाम करने के लिए या मज़ाक करने के विचार से ऐसी ऐसी बाते बनाकर उड़ा देते हैं कि जिससे मित्रों में तथा जनता और समाज वा जाति में उसकी बदनामी हो जाती है। इसलिये प्रायः सभी समझदार मनुष्यों के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि अगर कोई ऐसी बात सुने तो किसी निश्चय पर आने से पहिले उसकी जाँच कर ले। अगर मुनासिब हो तो किसी के ज़रिये से बातचीत कराकर मामले को साफ कर ले। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बात कही किसी मतलब से जाती है पर लड़ाने वाले उसका और का और अर्थ लगाकर बताते हैं। इसलिये विचार कर राय क़ायम

करनी चाहिये। किसी बात को सोचे समझे बिना ही मान बैठने से बड़े बड़े नुक़सान और झगड़े हो जाया करते हैं।

दूसरो को भला बुरा कहने में लोग बहुत जल्दी करते हैं, बहुत से आदमी बातचीत मे बड़े सख्त और साफ़ होते हैं पर उनका हृदय बड़ा सरल व मुलायम होता है। बहुत से बातचीत मे बड़े मीठे और नम्र होते है पर उनका हृदय बड़ा कठोर और मलीन होता है।

बहुत से व्यक्ति बड़े शेखीख़ोरे और लम्बी चौड़ी बात हाँकने वाले होते है पर वास्तव में वह खोखले और निकम्मे होते हैं। बहुत से मनुष्य अपने बारे में कोई बड़ी बात या बहादुरी या सचाई की बात नहीं कहते है पर वास्तव में वे बड़े बहादुर और ईमानदार होते है।

बुरे को भला समझ लेने से हानि होने की सम्भावना रहती है क्योंकि विष भरे कनक घटों की संसार में कमी नहीं है और भले को बुरा समझ बैठने से उससे जो लाभ पहुँचने की सम्भावना है उसको कम कर देना है। किसी को भला बुरा समझने में हानि लाभ के अतिरिक्त न्याय और अन्याय का भी प्रश्न है। जब तक हम पूरी परीक्षा न कर लें तब तक किसी को बुरा कहने का हमको अधिकार नहीं है। बुरे को भी भला कह देना समाज को धोका देना है।

आज कल प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कुछ स्वार्थी ईर्षालु और ग़ैर जिम्मेदार आदमी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं (Public workers) के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी बातें उड़ा देते हैं जिनसे उनकी बदनामी हो।

जनता में बहुत से भोले भाले आदमी कुछ समय के लिये ऐसी बातों पर इतमीनान भी कर लेते हैं। ऐसा करने से कार्यकर्त्ता के चित्त को बड़ी ठेस पहुँचती है। इसलिये जो समझदार आदमी हैं उन्हें ऐसी बातो का खण्डन करना चाहिये और स्वार्थी लोगों को शर्मिन्दा और क़ायल करना चाहिये ताकि वे भविष्य मे इस प्रकार की हिम्मत कभी न कर सकें और अगर कार्यकर्त्ता पर किसी बात का सन्देह हो तो उन्हें तुरन्त उससे बात करके साफ़ कर लेना चाहिये। ऐसा करने से कार्यकर्त्ता का उत्साह बढ़ता है मेरे विचारानुसार किसी एक अनजान व्यक्ति के जानने मे निम्न-लिखित बाते सहायक हो सकती हैं।

१—उसकी मातृभूमि क्या है, उसकी जाति क्या है, उसके माता पिता का इतिहास क्या है, उसकी शिक्षा क्या है, उसने क्या काम किया है ?

२—उसके धार्मिक विचार कैसे हैं, उसकी बातचीत कैसी है, उसकी आकृति कैसी है, वह किसी क़िस्म का नशा तो नहीं करता, झूठ तो नहीं बोलता, चोरी तो नहीं करता इत्यादि।

आज कल ज़माना बड़ा नाज़ुक है। तरह तरह के व्यक्ति तरह तरह का रूप धारण करके नाना प्रकार की बातें बनाकर जनता को ठगते अथवा धोका देते हैं। इसके साथ साथ बहुत से सच्चरित्र मनुष्य सच्चाई, सादगी और ईमानदारी को पसन्द करते हैं—यानी यो कहना चाहिये कि दोनों प्रकार के आदमी देखे जाते हैं, इसलिये प्रत्येक स्त्री, पुरुष, नवयुवक, विद्यार्थी, इत्यादि को बड़े सोच समझ कर अपनी राय क़ायम करनी चाहिये, वरना बड़ा धोका उठाना पड़ेगा।

अनुभव की आवश्यकता

संसार में बिना अनुभव के मनुष्य अपना जीवन सफल नहीं बना सकता। जो मनुष्य अनुभवी नहीं होते हैं उन्हें पग पग पर धोखा खाना पड़ता है और फल स्वरूप कभी कभी बड़े बड़े नुक़सान उठाने पड़ते हैं। केवल अनुभव ही मनुष्य को इस बात की शिक्षा देता है कि संसार में मनुष्य को किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। विद्यार्थियों को अथवा नवयुवकों को आप निरन्तर उपदेश तथा शिक्षा देते रहिये परन्तु जब तक उनको अनुभवी ज्ञान नहीं कराया जायगा और जब तक वे स्वयं किसी कार्य को नहीं करेंगे या देखेंगे तब तक उनका शिक्षण अधूरा रहेगा। जिन बातों का उपदेश दिया जाय उनका अनुभव करा दिया जाय तो परिणाम बहुत अच्छा और सन्तोषजनक होगा। जब एक अध्यापक अपने शिष्यों को बता देता है कि अमुक अमुक पहाड़ इस इस प्रकार का है अथवा अमुक नगर इस प्रकार का है तब तक उसका शिक्षण ज़ुबानी शिक्षण रहता है। शिष्यों को बताई हुई बातों का ज्ञान अथवा अनुभव नहीं होता। अगर कहीं वही अध्यापक अपने शिष्यों को किसी पहाड़ या नगर तक ले जाय और वहाँ उन्हें सारी बातें बता दे तो

शिष्यों का उन चीजों के सम्बन्ध में पूरा पूरा ज्ञान हो जायगा। इसी प्रकार के अनुभवयुक्त ज्ञान को हम पूरा ज्ञान कह सकते हैं, यही ज्ञान हमारे साथ रहता है। जिस ज्ञान का अनुभव रहता है उसका विद्यार्थी को निजी ज्ञान होता है और वह उसके सम्बबन्ध में अधिकार से कह सकता है। संसार-कर्म क्षेत्र है। इसमें रहने के लिये वही मनुष्य उपयुक्त हो सकता है जो कर्मशील हो, और कर्मशीलता बिना अनुभव के होती नहीं। केवल बातों से मनुष्य कोरा सिद्धान्त जान सकता है पर वह सफलतापूर्वक कार्य्य करने के योग्य कदापि नहीं हो सकता।

जो मनुष्य कार्य क्षेत्र में उतर कर कुछ काम करता है वही योग्य और सद्गुणी समझा जाता है और वही अनुभव प्राप्त करके बड़े बड़े कार्य्य भी कर सकता है। मनुष्य में वास्तविक मनुष्यत्व और बल तभी आता है जब वह समाज के लोगों के साथ मिल जुल कर काम करता है। काम करने से मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जाता है। कार्य्य ही से उसे शिक्षा मिलती है, कार्य्य ही से उसके धैर्य्य आदि की परीक्षा होती है और कार्य्य ही से अनुभव की वृद्धि होती है। एक मनुष्य कार्य्य करता हुआ जैसे जैसे अनुभव प्राप्त करता चला जाता है तैसे ही ज्ञान और कौशल की वृद्धि भी होती चली जाती है।

जो मनुष्य न तो विचार करता है और न अनुभव प्राप्त करता है वह वास्तव में बिलकुल असमर्थ व अकर्मण्य रहता है। उसे स्वयम् इस बात का बोध नहीं होता कि मैं कौन सा कार्य कर सकूंगा और कौन सा नहीं। इस कारण प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्ति का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त कर ले।

एक मनुष्य जिसे अपनी शक्ति और कमजोरियों का ज्ञान है वह कुमार्ग से सरलतापूर्वक बच सकता है। यह निश्चित बात है कि प्रत्येक मनुष्य में शक्तियाँ और कमजोरियां हुआ करती हैं पर जो निरन्तर अपनी शक्तियों की वृद्धि किया करता है वही अपने जीवन में सफल होता है।

अनुभव प्राप्त करने में आत्म ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि बहुधा अनुभव प्राप्त करते २ जब कुमार्ग में पैर पड़ जाता है, मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक शक्ति से काम लेना पड़ता है। उसके बल से वह उस समय अपने को वहाँ से हटा कर सुमार्ग पर ला सकता है। ऐसी परीक्षाओं के समय जिसमें आत्म बल नहीं होता है वह नाकामयाब हो जाता है। संसार में लोगों को कार्य्य करते करते शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और दूसरों के अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। जो मनुष्य दूसरो के अनुभव से लाभ उठाना अपनी तौहीन समझता है वह कभी कोई अच्छा या बड़ा कार्य्य नहीं कर सकता। जब हम यह जानते हैं कि बड़े बादशाह और अमीर उमरा लोग कुमार्ग में पड़ने से अर्थात शराब खोरी, ऐय्याशी इत्यादि व्यसन करने से नेस्त नाबूद होगये हैं तब यह हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने को सदा ऐसी बुरी बातो और आदतो से बचाते रहें और सुमार्ग का अवलम्बन करते रहें।

बुद्धिमत्ता, समझदारी आदि जितने प्रशंसनीय गुण हैं वह सब अनुभव के ही स्वरूप हैं। समस्त संसार अनुभव से ही बना है। एक विद्वान् किसी विषय में अनुभव करता है और अगर अपने जीवन काल में अपने अनुभव को पूरा नहीं कर सकता तो दूसरे विद्वान् उसके अनुभव से लाभ उठा कर आगे बढ़ते हैं और

उस कार्य्य में कामयाव हो जाते हैं। आज संसार में जितने आविष्कार देखते हैं वे और कुछ नहीं हैं सिर्फ लोगों के अनुभव के परिणाम हैं।

अमेरिका और यूरोप जब तक कि विद्यार्थीगण देशाटन नहीं कर लेते तब तक उनकी यूनीवर्सिटियो और कालेजों में दी हुई शिक्षा अधूरी समझी जाती है। वहां विद्यार्थियों को हर प्रकार की व्यावहारिक (Practical) शिक्षा दी जाती है अर्थात् उन्हे अनुभव कराया जाता है जिसकी वजह से वे संसार में सफल मनुष्य साबित होते है।

कालेज यूनिवर्सिटियो को छोड़ने के बाद जो शिक्षण चला करता है वह अनुभव की शिक्षा होती है। एक विद्वान् का मत है कि जीवन एक पाठशाला है जिसमें पुरुषो और स्त्रियों को अनुभव की शिक्षा दी जाती है। कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ, आलोचना इत्यादि इस पाठशाला के शिक्षक हैं। इन शिक्षको से हमें घबड़ाना नहीं चाहिये बल्कि उन्हे ईश्वर की ओर से नियुक्त समझना चाहिये। और वे हमें जो शिक्षा दें उसे केवल सुन ही नहीं लेना चाहिये बल्कि सदा अपने हृदय में रखना और उस पर मनन करना चाहिये।

एक समय एक सज्जन ने सुकरात से प्रश्न किया कि आपने इतना अनुभव और विद्वत्ता कहाँ से प्राप्त की है तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं बेपढ़े लिखे मनुष्यों से उनकी अच्छी अच्छी बातें ग्रहण कर लेता हूं और जो बुरी होती हैं उन्हें छोड़ देता हूँ। इसी प्रकार हम सबको चाहिये कि संसार में जिस क़दर अच्छी या बुरी बातें हमारे अनुभव या देखने में आवें उनमें से अच्छी अच्छी बातों को ग्रहण कर लें और बुरी बुरी बातो को छोड़ दे। ठीक

उसी तरह जिस तरह कि हंस पानी मिले हुये दूध में से दूध पी लेता है और पानी को छोड़ देता है इसी तरह से हमको अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातो का त्याग करना चाहिये।

आज कल प्रायः ऐसा देखा जाता है कि हमारे विद्यार्थी और नवयुवक ज्यादातर बुरी बातों और कुटेवों को तुरन्त ग्रहण करने को तैयार हो जाते हैं क्योंकि वे नहीं जानते कि उनकी बुरी टेवें और बुरी आदतें केवल क्षण भर के वास्ते झूठा आनन्द देती हैं लेकिन बाद में सारी जिन्दगी के वास्ते दुःखदायिनी हो जाती हैं। सच्चा सुख वही है जिसका अन्त सुख में हो। दुःखपरिणामी सुख किसी काम का नहीं। इसी कारण मैं विद्यार्थी और नवयुवकों से अनुरोधपूर्वक निवेदन करूँगा कि उनको हर समय हर घटना अपने जीवन में अनुभव प्राप्त करना चाहिये और सदा अपने को कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग पर लाना चाहिये। उसी हालत मे उन्हें अपने जीवन का आनन्द प्राप्त हो सकेगा अन्यथा नहीं।

मानव जीवन का महत्व और उसकी सार्थकता।

संसार जीवों से ठसाठस भरा हुआ है जहाँ देखो वहाँ जीव ही जीव नजर आते हैं, जैसे समुद्र-कच्छ, मच्छ, मगर, घडियाल इत्यादि से, पृथिवी-चींटी, चेंटे, टिड्डी, सांप, बीछू, कातर, इत्यादि कीट पतङ्गो से, और भेड़, बकरी, गाय, सियार, भेड़िया, सूअर, गदहा, घोड़ा, ऊंट, हाथी, इत्यादि चतुष्पदों से और आकाश कबूतर, तोते, चील, कौआ, इत्यादि से भरा पड़ा है। इनके अलावा लाखो प्रकार के ऐसे जीव है जो इतने सूक्ष्म हैं कि सादी नजर से दीखते नहीं, जिनसे पृथिवी पानी, वायु और अग्नि भरी पड़ी है। यह तो आप जानते ही हैं कि वृक्ष बेल और घास पात में भी जीव होता है। यह बात प्राचीन शास्त्रकारो ने मानी ही थी किन्तु इसको हमारे देश के स्वनाम-धन्य वैज्ञानिक सर जे, सी, बोस ने भी बड़े सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा प्रमाणित करदी है। पृथिवी लाखों प्रकार के जीवों से भरी पड़ी है। यह तो आपने पढ़ा और सुना होगा कि संसार में चौरासी लाख प्रकार की योनियाँ होती हैं और हर योनि में लाखों नहीं, करोड़ो नहीं वल्कि असंख्य जीव होते हैं। वह पाँच प्रकार की श्रेणियों में विभाजित हैं ऐसे जीव जिनके

सिर्फ एक इन्द्री अर्थात् शरीर ही होता है जैसे वृक्ष या वायु, अग्नि, पृथिवी, जल के जीव जो नजर से नहीं दिखाई देते हैं। दो इन्द्री जीव, जिनके सिर्फ दो इन्द्री अर्थात् शरीर और मुँह होता है जैसे केचुआ; तीन इन्द्रिय जीव जिनके सिर्फ तीन इन्द्रियां अर्थात् शरीर, मुँह और नाक होती है जैसे जूं इत्यादि। चार इन्द्रिय जीव जिनके चार इन्द्रियां अर्थात् शरीर, मुँह, नाक और आँख होती है जैसे मकड़ी, टिड्डी इत्यादि और पाँच इन्द्रिय अर्थात् शरीर, मुँह, नाक, आँख और कान होते है जैसे गाय, शेर, कबूतर, मछली, साँप, मेढ़क, इत्यादि। अच्छी योनि का मिलना जीव के शुभ कर्मों पर निर्भर है जब सब से बुरे और निकृष्ट कर्म होते हैं उस अवस्था मे जीव एकेन्द्रिय योनि को प्राप्त होता है। एकेन्द्रिय जीव के मुक़ाबिले कही ज्यादा शुभ कर्मों के उदय से दो इन्द्रिय योनि प्राप्त होती है। दो इन्द्रिय जीव के मुक़ाबिले अधिक शुभ कर्मों के उदय से त्रिइन्द्रिय योनि प्राप्त होती है। त्रिइन्द्रिय योनि के मुक़ाबिले कही अधिक शुभ कर्मों के उदय से चार इन्द्रिय योनि प्राप्त होती है और चौइन्द्रिय योनि के मुक़ाबिले जब कही अधिक शुभ कर्मों के उदय से पञ्चेन्द्रिय योनि प्राप्त होती है। पञ्चेन्द्रिय जीव जैसे पशु पक्षियो के मुक़ाबिले कहीं अनन्त शुभ कर्मो का उदय होता है जब कहीं मनुष्य योनि प्राप्त होती है।

संसार में अशुभ से अशुभ कर्म वाले जीवों की अधिक से अधिक संख्या है। संसार में जितने जीव हैं उनमें ज्यादा से ज्यादा संख्या अर्थात् अनन्त एक इन्द्रिय श्रेणी वाले जीव हैं। एकेन्द्रिय वाले जीवों से कहीं कम दो इन्द्रिय वाले जीव है। दो इन्द्रिय श्रेणी वाले जीवों से कहीं कम त्रिइन्द्रिय वाले जीव हैं, तीन इन्द्रिय श्रेणी वाले जीव को मुक़ाबिले में कहीं कम चार इन्द्रिय श्रेणी वाले जीव हैं और उसकी अपेक्षा कहीं कम पञ्चइन्द्रिय श्रेणी

वाले जीव हैं और पञ्चेन्द्रिय पशु, पत्ती, जलचर इत्यादि के मुक़ाविले मनुष्य की संख्या तो बहुत ही अल्प है।

अब हमको विचारना चाहिये कि संसार में चौरासी लाख जीव योनियो मे से किस क़दर उच्च कर्मों के उदय से यह मनुष्य योनि प्राप्त होती है और समस्त संसार ठसाठस जीवों से भरापड़ा है उनके मुक़ाविले में मनुष्य की अल्प संख्या उसी प्रकार है जैसे संसार के सारे समुद्रो के मुक़ाविले एक बिन्दु पानी की और संसार के सारे पहाड़ो और पृथिवी के मुक़ाविले एक अणु रज की।

मानलो कि मनुष्य जीवन पाना सरल है पर पूर्ण शक्ति और योग वाले पुरुष पाना महा मुश्किल और दुर्लभ है।

प्रायः हम देखते हैं कि बहुत से जीव तो माता के गर्भ में ही क्षीण हो जाते हैं, बहुत से जीव जन्मते जन्मते मर जाते हैं, बहुत से जीव अगर कुछ बड़े भी हुये तो बाल अवस्था मे मृत्यु को प्राप्त होजाते है। बहुत से जीव युवावस्था मे ही संसार से विदा हो जाते हैं। कहने का सारांश यह है कि बहुत थोड़े जीव (मनुष्य) पूर्ण आयुको प्राप्त होते हैं।

इसके अलावा हम देखते है कि बहुत से जीवो के हाथ होते हैं तो पैर नहीं होते, अगर पैर ठीक होते हैं तो आँख नहीं होती। अगर हाथ, पैर व आंखे ठीक हुई तो कान से बहरे और जुबान् से गूंगे होते हैं। अगर हाथ पैर, आंख, कान, और नाक ठीक है तो शरीर बेकार होता है। कहने का मतलब यह है कि ऐसे बहुत थोड़े आदमी होते हैं जिनकी सारी इन्द्रियां पूर्ण और स्वस्थ हों। अगर सारी इन्द्रियां और शरीर ठीक है तो आये दिन कोई न कोई बीमारी लगी रहती है। संसार में बहुत

थोड़े आदमी ऐसे होते हैं जो सदा निरोग रहते हों। इसके अलावा बहुत से जीव ऐसे देश अर्थात् क्षेत्र विशेष मे पैदा होते हैं कि जहां मनुष्य धर्म का नामोनिशान तक नहीं होता जैसे अफ्रिका देशो आदि असभ्य में पाये जाते हैं। इसके अलावा बहुत से जीव ऐसी गिरी हुई जातियो मे पैदा होते है जहां सिवाय चोरी, डकैती, शराब और मांस भक्षण इत्यादि के कोई बात होती ही नहीं है। इसके अलावा बहुत से जीव निर्धन कुलों मे उत्पन्न होते हैं जहां पढ़ना लिखना तो दूर रहा, खाने पहनने को भी पूरा नहीं मिलता। बहुत से जीव ऐसे स्थानों व जातियों में पैदा होते हैं जहां अच्छे धर्म का मिलना और सुसंगति का होना महा कठिन है।

हम देखते हैं कि अधिकांश मनुष्य किसी न किसी अपूर्णता से ग्रसित है। अगर पूर्ण इन्द्रियां है तो दीर्घ आयु नहीं मिलती है अगर दीर्घायु होती है तो निरोग काया नहीं मिलती है। अगर पूर्ण इन्द्रियां दीर्घायु और निरोगी काया मिल भी गई तो उत्तम क्षेत्र अर्थात् देश नहीं मिलता। अगर अच्छा देश भी मिल जाता है तो उत्तम कुल नहीं मिलता। अगर ऊपर की सारी बातें मिल जांय और उत्तम धर्म तथा सुसंगति नहीं मिली तो भी जीवन बेकार सा रहता है।

उपरोक्त बातें अपने पूर्व जन्म के श्रेष्ट कर्मों के सञ्चय का फल है। अब हमें विचारना चाहिये कि ऐसी श्रेष्ट और उत्तम मनुष्य योनि जो इतने परिश्रम और कठिनाई से मिलती है वह क्यों कर सुफल बनाई जा सकती है। मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलता, लाखों, करोड़ों नहीं, बल्कि असंख्यों योनियों के बाद मनुष्य योनि प्राप्त होती है। इस पर पूर्ण योग वाई (सामग्री) का प्राप्त होना और भी कठिन है। पेश्तर इसके कि आप से मनुष्य जन्म

सार्थक बनाने के बारे में कुछ निवेदन किया जावे यह जरूरी मालूम होता है कि आप के सामने एक उसूल अर्थात् कसौटी रखदूं कि किन किन कर्मो के फल से कौन सी गति मिलती है ।

१—जो जीव, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, वनस्पति और चलते फिरते जीवो की हिन्सा करता है और पञ्चेन्द्रिय जीव अर्थात् पशु, पक्षी और जानवरों का वध करता है, शराब, मांस, विषय आदि वस्तुओं का तीव्र सेवन करता है वह जीव मरने के बाद नर्क का निरन्तर निवासी बनता है और वहां वह नाना प्रकार की यातनाओं को चिरकाल तक सहता है ।

२—जो जीव किसी के साथ कपट का व्यवहार करता है, कपट ही जिसका खान, पान, लेन, देन तथा आहार विहार है, झूठ तो जिसको जन्म ही से प्यारा है, किसी को ठग लेने में वह अपना बड़प्पन समझता है ऐसे प्राणी मरने के बाद तिर्यक् (पशु, पक्षी कीट, पतङ्ग) योनि को धारण कर जीवन के अनेक प्रकार के बड़े बड़े कष्टो को सहते है ।

३—जो जीव विनय शील है, कपट के कामों से दूर रहता है, जिसके विचार उच्च और जीवन सादा है जिसके रग रग मे दया का सञ्चार है, जिसने ईर्ष्या को त्याग दिया है और सदा सदाचारी जीवन व्यतीत करता है वह मरण के पश्चात् मनुष्य जन्म ही ग्रहण करता है ।

४ - जो प्राणी संयमधारी साधु है अर्थात् हिंसा नहीं करता, सत्य बोलता है, विना दिये हुये किसी की वस्तु नहीं लेता, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है, कोई धन अपने पास नहीं रखता और वह गृहस्थ जो सदा सत्य बोलता है, अपनी स्त्री के सिवाय किसी स्त्री की ओर नहीं देखता है, जान कर कोई हिंसा नहीं करता

है, किसी क़िस्म का नशा नहीं करता है, किसी क़िस्म का विश्वास-घात नहीं करता है, सदा सदाचार से रहता है, सदा न्याय मार्ग का अवलम्बन करता है, हर बात की मर्यादा रखता है, तपस्या और ध्यान करता है, वह मरने के पश्चात् स्वर्ग मे जा देवत्व को धारण कर देवताओं के प्रधान सुखों का उपभोग करता है।

५ जो श्रेष्ठ जीव यथार्थ संयम पालने वाला यानी पंच महाव्रत पालन करने वाला अर्थात् जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्रकार की हिन्सा नहीं करता, सदा सत्य बोलता है और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है और किञ्चितमात्र धन पास नहीं रखता है, जो न्याय से परिपूर्ण है, जो सुख दुःख को समान समझता है, सदा श्रेष्ठ ब्रह्मचारी रहता है, जो संसार मे इस प्रकार रहता है जैसे कमल पानी में, जो भगवान की आज्ञाओं का पालन करता है और उसके ऊपर अचल विश्वास रखता है, वह शुभ अशुभ कार्यों का भोग पूर्ण करता हुआ उस सिद्ध स्थान को प्राप्त कर लेता है, जहां चिरकाल तक आत्मानन्द, श्रेष्ठ सुखों इत्यादि का अनुभव करता रहता है।

उपरोक्त बातो से मेरे प्रिय बन्धु समझ गये होंगे कि मनुष्य योनि किस क़दर महत्व की चीज़ है। सिर्फ मनुष्य योनि ही एक ऐसा ज़रिया है जिसको सार्थक बनाने से मनुष्य देवगति व सिद्ध गति को प्राप्त कर सकता है और उसको निर्थक बनाने से नरक गति और तिर्यक् गति में पड़ सकता है।

इसलिये अब हम विचारेंगे कि मनुष्य जन्म जो इतना दुर्लभ है उसको क्यों कर सार्थक अर्थात् सुफल बना सकते हैं। प्रायः हम ऐसा देखते हैं कि ज्यादातर मनुष्य इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ रहते हैं कि मनुष्य जन्म मिलना कितना

दुर्लभ है। अगर यथार्थ मे देखा जाय तो मनुष्य जन्म एक अनमोल हीरे के सदृश है। आज कल उसकी कीमत फूटे हुये कांच से भी कम समझी जाती है। इसका मतलब केवल यही है कि ज्यादातर मनुष्यो में स्वार्थ और कुसंगत के कारण यथार्थ ज्ञान ही नहीं है कि वह मनुष्य जन्म के महत्व को समझ सकें; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक देहाती सच्चे और नक़ली नग में फ़रक़ नही मालूम कर सकता। यह क़रीब करीब सभी लोग जानते हैं कि आज कल मनुष्य की आयु बहुत कम है और साथ साथ यह भी जानते हैं कि एक दिन अवश्य मरना है और यह भी निश्चय नहीं कि किस क्षण में यह शरीर छूट जायगा। आये दिन हम यह घटना देखते ही रहते है कि बात की बात मे लोग रेल लड़ने से, मोटर दुर्घटना से, घोड़े से गिरने से, मकान पर से गिरने से, ठोकर खाकर गिरने से, हैजे से, प्लेग से, सांप के काटने से, बिजली के गिरने से, आंच से, जहाज़ डूबने से, नदी मे डूबने से, बन्दूक़ लगने इत्यादि से तुरन्त काल के गाल मे समा जाते हैं।

यह सब बातें जानते हुये और देखते हुये हमारे बहुत से ना-समझ भाई और बहिन ऐसे ऐसे कर्म कर डालते हैं जिनको कदापि सुनना ही नहीं चाहिये। देखने व सुनने से शर्म के मारे सिर झुक जाता है। अब हमको विचारना चाहिये कि हम इस अमूल्य मनुष्य जन्म को किस प्रकार सार्थक बना सकते है। मनुष्य जन्म प्राप्त करने का क्या उद्देश्य है? क्या मनुष्य जन्म पाने का यही मतलब है कि हम दुनियां को धोका दें, झूठ बोलें, चोरी करें, नशा करें, हिन्सा करें, कम तोले, कम नापें, नक़ली को असली बनावें, झूठी गवाही दे, झूठी दस्तावेज़ या रुक्के बनावें, लोगो की चुग़ली खायें, बुरी बात कहे, ईर्ष्या या द्वेष करे, क्रोध, मान, माया और लोभ करें, विषय सेवन करें, कमज़ोरो को कष्ट दें, बलात्कार

करें, पशुओं का बध करें, निकृष्ट पेशा करें, साधुओं बुजुर्गों का अपमान करें या खूब खायें और मौज करे (Eat drink and be marry), नहीं नहीं, कदापि नहीं, मनुष्य जन्म पाने का क्या कभी यह उद्देश्य हो सकता है ? क्या इस प्रकार कभी भी हम अपने जीवन को सफल और सार्थक बना सकते हैं ?

मेरे तुच्छ विचारानुसार मनुष्य निम्न लिखित तरीक़े से अपने जीवन को सफल बना सकता है।

संसार मे हर प्राणी के वास्ते दो रास्ते हैं—एक तो चारित्र मार्ग अर्थात् सदाचारी होना और दूसरा अपने कर्त्तव्य का यथार्थ रूप में पालन करना। इन दोनो मार्गों का एक दूसरे से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। अगर एक व्यक्ति इन दोनों मार्गों का ध्यान पूर्वक यथार्थ रूप में पालन करे तो अवश्य अपने मनुष्य जन्म को सफल अर्थात् सार्थक बना सकता है।

पहिला रास्ता सदाचार का तो संसार मे सब मनुष्यो को एक सा है और दूसरा मार्ग प्रत्येक आदमी के वास्ते जुदा जुदा है। जो मनुष्य इन दोनों मार्गों का अवलम्बन करेगा वह अपने जीवन को अवश्य उच्च और सफल बना सकेगा। पर प्रायः ऐसा देखा जाता है कि आज कल ज्यादातर मनुष्य इन दोनो मार्गों से विमुख होगये हैं। जिसका कारण यही नज़र आता है कि अपने झूठे स्वार्थ में पड़ कर मृग तृष्णा के समान भटकते फिरते हैं। जिसका फल यह होता है कि न तो उनको संसारी सुख मिलते हैं और न पारलौकिक अर्थात् परम शान्ति प्राप्त होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि चारित्र मार्ग अर्थात् सदाचार क्या है ? जो मनुष्य निम्न लिखित बातों को कार्य्य में लाता है उसे चरित्रवान् अर्थात् सदाचारी कहते हैं। वह निम्न प्रकार हैं—

सदा सत्य बोलना, विश्वास योग्य बनना; कोई नशा न करना, सदा दयाभाव रखना, हिंसा न करना, सदा क्रोध, मान, माया और लोभ से दूर रहना, अपनी स्त्री के अलावा सबको माता, बहिन तुल्य समझना, न्याय पूर्वक जीवन को व्यतीत करना, किसी से ईर्ष्या द्वेष नहीं करना, किसी बुरी आदत का न होना, सदा समाज देश और मानव जाति का सच्चा सेवक होना आदि जिसमें हो उसका हृदय सदा सन्तुष्ट और बलिष्ट रहता है। खान, पीन, रहन, सहन सदा सादा और स्वच्छ होता है, कमजोरों की सदा सहायता करता है, सुसंगत करता है, प्रति दिन थोड़े समय के वास्ते एकान्त मे बैठ कर शान्ति चित्त से अपने सारे दिन के किये हुये कार्यों पर विचार करता है और अगर कोई अनुचित बात भूल से होगई हो तो उस पर पश्चाताप करता है और भविष्य मे न करने का ध्यान रखता है। सदा मधुर बचन बोलता है, जितना हो सकता है उतना तन, मन, धन से जरूरत वालों की सहायता करता रहता है, प्रतिदिन थोड़ा बहुत शास्त्रो, ग्रन्थो व अन्य उपयोगी पुस्तको का अवलोकन किया करता है।

सब सिद्धान्तो का मूल सिद्धान्त यह है कि सब जीवों को अपने समान समझे। जिससे अपने को दुख होता है उससे दूसरे को भी दुख होता है। दूसरों को दुख पहुँचाने के समान संसार में कोई पाप नहीं है और दूसरो के उपकार के बराबर पुण्य नही। सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो काम हम दूसरे के लिये करते हैं उसको हमे अपने प्रति करना चाहिये या नहीं। पराया हित साधन करना ही पुण्य है। "पर हित सरिस पुन्य नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई"।

दूसरा मार्ग कर्त्तव्य का है। यह कर्त्तव्य मार्ग क्या है? प्रत्येक मनुष्य का अपनी श्रेणी या कार्य्य के अनुसार प्रथक् प्रथक् कर्त्तव्य

होता है। जैसे गृहस्थ, स्त्री या पुरुष, पुत्र और पिता, भाई व बहिन, विद्यार्थी और नवयुवक, दुकानदार और खरीदार, स्वामी और नौकर, डाक्टर और मरीज, वकील और मुवक्किल, किसान और बौहरा, मिलमालिक और मजदूर, धनी और निर्धन, दुःखी और सुखी, गुरु और शिष्य, पड़ौसी पड़ौसी, कमजोर व बलवान, राजा और प्रजा इत्यादि का।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि आज कल ज्यादातर मनुष्य अपने कर्तव्य पथ से बहुत दूर हो गये हैं जिसके कारण देश जाति व समाज में बड़ी खलबली मची हुई है। आज कल एक दूसरे को धोखा देना चाहता है. बात बात में झूठ बोला जाता है। एक दूसरे को ठगने की कोशिश करता है, एक दूसरे को उल्लू बनाना चाहता है, एक समय में अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है. बाहरी दिखावा खूब दिखाया जाता है, जिसे देखो अपनी चाल से खाली नहीं है, इसी का यह परिणाम है कि अधिक तर लोग पतन की ओर चले जारहे हैं। अगर संसार के मनुष्य अपने कर्तव्य पथ पर डट जांय तो वे अपने जीवन को बड़ी आसानी से सफल और सार्थक बना सकते हैं।

मनुष्यों को जरा विचार शक्ति से काम लेना चाहिये और ध्यान पूर्वक सोचना चाहिये कि मनुष्य जन्म पाना किस प्रकार कठिन एवं दुर्लभ है। इसलिये इस बहुमूल्य मनुष्यरूप रत्न को पाकर निरर्थक नहीं खो देना चाहिये बल्कि इसका सदुपयोग करना चाहिये।

प्रति दिन संसार में लाखो मनुष्य जन्म लेते हैं और मरते हैं पर मरने के बाद उनका कोई चिन्ह बाकी नहीं रहता, पर जो अपने मनुष्य जन्म के महत्व को समझ गये हैं और जिन्हों ने सदाचारी जीवन व्यतीत किया है, जिन्हों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया

आज उनका नाम संसार मे अमर है। इस लिये जो मनुष्य इस संसार में और परलोक में भी अपने जीवन को सफल और शान्ति मय बनाना चाहते हैं, उनको सदाचार के साथ, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये जीवन व्यतीत करना चाहिये। उसी दशा में वह अपने जीवन को सफल अर्थात् सार्थक बना सकते है। जो मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं, उनको कुछ जरूरी बातें नीचे दी जाती है:—

१—ज्ञानी और सन्त महात्माओ की सेवा करते हुये सदा उस ज्ञान की खोज में रहना चाहिये, जिससे ऐहिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो परन्तु ज्ञानी गुरु के प्रति कहीं भी कभी अविनय न दिखावे।

२—कर्म बन्धन से छूटने का सीधा सच्चा उपाय यही है कि तुम जगत के प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान समझो और उन के साथ उचित व्यवहार करो तथा वाह्य विषयों से इन्द्रियों को हटा कर अपने वश मे रक्खो।

३—सदा प्रसन्न चित्त से ज्ञानादि गुणों में तल्लीन रहो। हम को यह ख्याल रखना चाहिये कि चिन्ताओ ने मानों जन्म ही नहीं लिया है। फिर तुम देख पाओगे कि आनन्द स्वरूप आत्मा में ज्ञान के अतिरिक्त अज्ञान को स्थान है ही नहीं।

४—जहां तक मुमकिन हो मनुष्य को तन, मन और धन से परोपकार करते रहना चाहिये। सब धर्मों का सार परोपकार ही में है।

५—देश जाति व समाज की सेवा करते रहे।

६—कमजोरों, वृद्धों, बच्चो और स्त्रियो की सहायता करते रहना।

७—जो कुछ आमदनी हो वे उसमें से कुछ हिस्सा अवश्य दान में निकालते रहना चाहिये।

८—अगर मन में बुरे विचार आवें तो फौरन रोक देना चाहिये और सदा अच्छे भाव रखना चाहिये।

प्रसन्न रहना केवल अपने ही लिये आवश्यक नहीं है वरन् दूसरों के लिये भी आवश्यक है। इसलिये प्रसन्न रहने को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये।

९—जब दो आदमी आपस में बात चीत कर रहे हों तब दख़ल मत दो अर्थात् बिना पूछे मत बोलो।

१०–कभी किसी से अनुचित हंसी मज़ाक मत करो।

११–पहले तो कोई कार्य्य हाथ में न लो और लो तो सोच विचार कर लो और बिना पूरे किए कदापि न छोड़ो।

१२–अप्रिय किन्तु सत्य शिक्षा देने वाले पर कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। उसे हमको अपना सच्चा हितैषी समझना चाहिये।

१३–अगर भूल से या ग़लती से कोई अनुचित कार्य्य होजाय तो उसे मत छिपाओ और भविष्य के वास्ते ध्यान रक्खो कि ऐसा कार्य्य दुबारा न हो।

१४–कभी किसी की निन्दा या चुग़ली न करो वरना नीचा देखना पड़ेगा।

१५–"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय। जो मन खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय"। जिसमें सबका हित हो उसीको अपना हित समझो। जो सुख क्षणिक हो और जिसका परिणाम दुःख हो ऐसे सुख से बचो। ऐसे सुख की खोज करो जो चाहे कठिनाई से प्राप्त हो परन्तु चिरस्थायी हो।

१६-अपने विचार शुद्ध रखने के लिए बा० जुगलकिशोर मुख्तार की आगे लिखी 'मेरी भावना' प्रति दिन पढ़िए।

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों का मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्धवीर जिन हरिहर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी मे लीन रहो॥
विषयो की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशि दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं॥
रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहै।
उनही जैसी चर्य्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहै॥
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूं।
पर धन वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल-सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरो का उपकार करूं॥
मैत्री भाव जगत मे मेरा, सब जीवो से नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवो पर मेरे, उर से करुणा श्रोत बहे॥
दुर्जन-क्रूर कुमार्ग रतो पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य भाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणत हो जावे॥
गुणी जनों को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥

होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आजावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तोभी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥
होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी स्मशान भयानक, अटवी से नहिं भय खावे॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहन शीलता दिखलावे॥
सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावें॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जगमे, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगत में फैल सर्व-हित किया करे।
फैले प्रेम परस्पर जगत में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख-संकट सहा करें॥

चार आश्रम और उनके कर्त्तव्य

प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता में समाज संगठन के हित संसार के सारे कार्य देश की आवश्यकताओ के अनुसार विभाजित कर दिये थे और लोग उनके अनुसार चलकर परम आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे, पर जब से हम लोगों ने उन नियमों का उल्लंघन करना शुरू कर दिया तब से हम लोग नाना प्रकार की विपत्ति मे पड़ गये। वे लोग सदा प्रसन्न रहते थे, सदा विद्याभ्यास करते थे और उन्हें भोजन वस्त्रों की कमी न थी इसलिये सन्तोषमय जीवन व्यतीत करते थे। उस समय में इच्छाऐ बहुत कम होती थी। परिणाम स्वरूप वे लोग पूर्ण आयुष्मान अर्थात् सौ सवासौ वर्ष के होते थे। उन लोगो ने अपने जीवन के चार हिस्से कर रक्खे थे। ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। उन्होंने हर प्राणी की उम्र कम से कम सौ वर्ष की समझ रक्खी थी। ईसाई धर्म के अनुसार मनुष्य की आयु ७० वर्ष की ही मानी गई है। उसी के अनुसार उन्होंने इसको चार भागों में विभाजित कर रक्खा था अर्थात् पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम, पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ आश्रम, पच्चीस वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम और पच्चीस वर्ष तक सन्यास आश्रम। अगर हम-

लोग अब भी आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमको अपने जीवन को नियमपूर्वक बनाना चाहिये। अगर हम लोग अपने जीवन की ओर पूरा पूरा ध्यान दें तो हम आसानी से सौ वर्ष नहीं तो अस्सी वर्ष का जीवन अवश्य बना सकते है। इसी प्रकार हमको इसको चार हिस्सों में निम्न प्रकार बांटना चाहिये, अर्थात् बीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य, तीस वर्ष तक गृहस्थ, पन्द्रह वर्ष तक वानप्रस्थ और पन्द्रह वर्ष तक सन्यास।

वर्त्तमान समय में आवश्यकताऐं तथा चिन्ताऐं बहुत बढ़ गई हैं। इस कारण इसमे कुछ हेर फेर करने की जरूरत प्रतीत होती है। उसके अनुसार हमने ऊपर लिखे अनुसार मनुष्य जीवन को विभाजित किया है। इन चारो आश्रमों के सम्बन्ध में अपने विचार मैं नीचे देता हूं।

ब्रह्मचर्याश्रम

माता पिता के जैसे विचार होगे उसी के अनुसार सन्तान होगी, गर्भ में बच्चे पर माता के आचार विचार, खान पान इत्यादि बातों का उसी प्रकार असर पड़ता है जिस प्रकार किसी व्यक्ति का तसवीर उतरवाते समय केमरा में। अतः माता पिता को अपने खयालात तथा आचार विचारो को सदा स्वच्छ रखना चाहिये। बच्चा जब जन्म लेता है तभी से शिक्षा ग्रहण करने लगता है। ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता है त्यों त्यो वह अपनी माता को पहचानना, भूख लगने पर रोना, प्रसन्न होने पर हँसना इत्यादि बातें शुरू कर देता है। जब बच्चा तीन चार वर्ष का हो जाता है तब वह अपने माता पिता के और उन लोगों के जो उसके पास रहते हैं अनुसार चलता है। मनुष्य का बच्चा बड़ा अनुकरणशील होता है। अगर माता पिता अच्छी अच्छी बातें

करते हैं तो वह भी उनके अनुसार अच्छी अच्छी बातें करता है। अगर वह गाली देते है या हुक्का पीते हैं या किसी को पीटते हैं तो बच्चा भी उनकी नक़ल करने लगता है। इसलिये माता पिता अगर अपनी सन्तान को उच्च और होनहार बनाना चाहते हैं तो उन्हें सदा अच्छे कार्य करते रहना चाहिये जिससे उनके द्वारा बालकों के अच्छे संस्कार बनें। यदि माता पिता ग़ुस्सा, दिल्लगी, मज़ाक़, रोना, पीटना, गाली गलौज इत्यादि करेंगे तो बच्चा भी अवश्य उनकी नकल करेगा और अगर माता पिता शान्त रहेंगे, प्रेमयुक्त बचन बोलेंगे, बड़ों का आदर करेंगे, सत्य बोलेंगे, साफ सुथरे रहेंगे इत्यादि तो बच्चा भी उन्हीं के अनुसार आचरण करेगा। जो माता होनहार व आदर्श होती हैं वह अपने बच्चे को घर ही मे बहुत कुछ शिक्षा दे लेती है। वर्त्तमान समय के अनुसार बच्चे को छै बरस की उम्र से पढ़ने का कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। छोटी उम्र में बच्चों का जिगर बहुत कमजोर होता है और उसकी पाचनशक्ति बहुत मामूली होती है इसलिये बच्चे को हल्के से हल्का भोजन देना चाहिये। बच्चों के वास्ते सब से उत्तम भोजन दूध है जो उनकी हड्डी को खूब मजबूत बनाता है।

बच्चों को अगर घर पर पढ़ाना हो तो किसी सदाचारी और अच्छे अध्यापक द्वारा पढ़ाना चाहिये और अगर किसी पाठशाला में भेजना हो तो ऐसी पाठशाला में भेजना चाहिये जहां अध्यापक सुयोग्य और अनुभवी हो और जिसके प्रबन्धकर्ता भी योग्य और उत्तम मनुष्य हों। मामूली अध्यापक या मामूली पाठशाला में बच्चे को नहीं पढ़ाना चाहिये। बच्चे के माता पिता को चाहिये कि वे प्रति दिन बच्चे को घंटे आध घंटे ज़ुबानी शिक्षा देते रहें और उसके हृदय में अच्छे अच्छे विचारों का समावेश करते रहें।

सदा उसकी तन्दुरुस्ती, खान पान, कपड़े तथा खेल कूद का प्रबन्ध करते रहें। सदा इस बातका ध्यान रक्खें कि बच्चा बुरे लड़को की संगति में न पड़ जाये। सदा उसको बुरी आदतों से बचाते रहे।

जब बच्चा पाठशाला की पढ़ाई खतम करले तो उसे किसी अच्छे आदर्श स्कूल मे भरती कराना चाहिये जहां के अध्यापक अच्छे व अनुभवी हों और जहां के प्रबन्धकर्ता भी सुयोग्य और सच्चरित्र हों। स्कूल मे भरती कराते समय बच्चे की अवस्था करीब दस ग्यारह वर्ष की होनी चाहिये। बच्चे को स्कूल में कमसे कम छटे दर्जे में भरती कराना चाहिये। अगर जरूरत हो तो स्कूल में भरती कराने के पहले बच्चे को किसी पाठशाला में या घर पर पढ़ाकर दर्जे की योग्यता प्राप्त करादेना चाहिये। आज कल कुछ गुरुकुल भी स्थापित हो गये हैं जिनकी भारत में परमावश्यकता थी। अच्छा तो यही है कि बच्चे को छः या सात वर्ष की उम्र के बाद किसी अच्छे गुरुकुल में भरती करा दिया जाय।

बच्चों के सुधारने का समय दस या बारह वर्ष की उम्र से लेकर सोलह या अठारह वर्ष की उम्र तक है। इस समय में बच्चा के खान, पीन, रहन सहन, पढ़ने, लिखने खेल कूद और उनकी संगति पर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। इस आठ दस वर्ष के समय में बच्चे एक नवीन कोमल पौदे के समान होते हैं। उसे जिधर झुकावोगे वह उधर ही झुक जायगा। इसलिये इस समय बच्चे में जिस प्रकार के ख्यालात भरे जायेंगे-उसी प्रकार का वह बन सकेगा, अगर बच्चा स्कूल में पढ़ता है तो माता पिता को या उसके हित चिंतकों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह क्या पढ़ता है? किन विद्यार्थियों और बालकों के साथ रहता और वे बालक किस विचार के हैं। अगर वे बालक बुरे ख्याल के हों तो उन्हें समझाकर ठीक कर देना चाहिये वरना अपने बच्चे

को उनकी शोहबत से अलग कर देना चाहिये और अगर बच्चा गुरुकुल मे है तो वहां बिगड़ने की बहुत कम सम्भावना होती है। जो माता पिता अपने बच्चों की शिक्षा और आचरण का उचित ध्यान नहीं रखते उनमें ज्यादातर बच्चे अज्ञान के कारण बुरे मार्ग में पड़ जाते हैं क्योकि वे नहीं जानते कि बुरी शोहबत के क्या क्या परिणाम होते हैं? जब बच्चा पढ़ लिख कर तैयार हो जाय तो साल दो साल उसे किसी ऐसे अनुभवी पुरुष की संरक्षता में, जिसको कि बच्चे के भविष्य मे किये जाने वाले कार्य का पूरा अनुभव हो, काम सिखवाना चाहिये। जब युवक की उम्र बीस वर्ष की हो जाय तब उसकी शादी करनी चाहिये। शादी करने के पहले लड़की के कुल को अच्छी तरह देख लेना चाहिये। कहीं लड़की रोगी न हो। लड़की सुशील, शिक्षित और उत्तम विचार वाली होनी चाहिये चाहे धन मिले या न मिले। लड़की की उम्र कमसे कम चौदह वर्ष की होनी चाहिये। अगर समाज बंधन न हो तो अच्छा है कि लड़के स्वयं अपनी इच्छानुसार लड़की तलाश कर लिया करें। अगर युवक और युवती की प्रकृति मिल जायगी तो वह जोड़ा सदा अनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगा। किन्तु ऐसे विवाहो में माता पिता या संरक्षक को इस बात का विचार कर लेना आवश्यक है कि लड़का और लड़की का परस्पर आकर्षण क्षणिक तो नहीं है। चूंकि विवाह से एक जीवन भर का सम्बन्ध स्थापित होता है इसलिये वर या कन्या के चुनाव में पूरी सावधानी रखनी चाहिये।

निम्न लिखित बातें बच्चो व विद्यार्थियो तथा नवयुवकों के वास्ते अत्यंत आवश्यक तथा लाभदायक साबित होंगी:—

१—माता, पिता गुरु और वृद्ध आदमियों को नित्य और जहां मिलें वहां नमस्कार और आदर सत्कार करना चाहिये।

२—सादा व स्वच्छ वस्त्र पहिनना, फैशन और टीम टाम से सदा दूर रहना चाहिये।

३—बुरी शोहबत, बुरे लड़कों और बुरी आदतों से सदा दूर रहना चाहिये।

४—सदा बुजुर्गों, अच्छे विद्यार्थियों और नवयुवकों की शोहबत में रहना चाहिये।

५—नित्य प्रति थोड़ा बहुत व्यायाम करते रहना चाहिये।

६—सदा सच बोलना, क्रोध नहीं करना, धोखा नहीं देना और उतावला नहीं होना चाहिये।

७—पढ़ने के समय पढ़ने में पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। जिस दिन का जो पढ़ना हो या काम करना हो उसको उसी रोज कर लेना चाहिये। कभी दूसरे दिन के लिये नहीं छोड़ना चाहिये। विद्यार्थियों को चाहिये कि जो कुछ वह पढ़ें रुचि के साथ पढ़ें और समझ कर पढ़ें ताकि वह उनके मानसिक संस्थान का एक अंग बन जाय।

८—प्रति दिन आध घंटे अपने इष्ट देव का ध्यान करना चाहिये।

९—सदा दीन दलितों, रोगियों और पीड़ितों की सहायता करना चाहिये।

१०—विद्यार्थियों को निरीक्षण का प्रयास बढ़ाना चाहिये अर्थात् उनको संसार में आंख खोल कर चलना चाहिये। जो कुछ देखें उसको अपने मन में नोट करलें और उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करें।

गृहस्थाश्रम

यह आश्रम सब आश्रमों में मुख्य है और सब आश्रम इसके आश्रित हैं। जिस प्रकार गाड़ी को चलाने के वास्ते दो पहियों की आवश्यकता है, उसी प्रकार गृहस्थी रूप गाड़ी चलाने के वास्ते स्त्री पुरुष रूपी पहियों की आवश्यकता होती है। अगर गाड़ी के पहिये सम और मजबूत होते हैं तो गाड़ी अच्छी प्रकार चल सकती है, उसी प्रकार अगर स्त्री पुरुष सुयोग्य और अच्छी प्रकृति के होते हैं तो आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

जिस गृह में स्त्री पुरुष प्रेम से रहते हैं वहां सदा लक्ष्मी रहती है और सब सुखी व प्रसन्न रहते हैं।

स्त्री को घर के अन्दरूनी प्रबन्ध के वास्ते प्रयत्न करते रहना चाहिये और छोटे बच्चों की देख भाल पर पूरा ध्यान देते रहना चाहिये। स्त्री को आमदनी देख कर खर्च करना चाहिये। सदा जैसी अवस्था हो उसमें संतुष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये। जब पतिदेव भोजन करने या काम पर से आवें उस समय अपनी जरूरत जाहिर करने या घर के किस्से ले बैठने के बजाय प्रसन्न चित्त होकर उनका स्वागत करे और प्रेमपूर्वक भोजन करावे। क्योंकि व्यौपार में या नौकरी में चिंता लगी रहती है अगर घर पर भी यही चिंता और फिकरें लगी रहें या सुनाई दे तो चित्त को बहुत बुरा मालूम होता है। स्त्रियां अपने प्रेम और संतोष के कारण झोंपड़ी को स्वर्ग से भी अधिक कमनीय बना सकती हैं और यदि वे कलह परायण हों तो राज महल भी नरक बन जावेगा। मनुष्य की प्रसन्नता उनकी प्रसन्नता पर निर्भर है। उनका संतोष विपत्ति को भी एक अनुपम सौंदर्य दे देता है। स्त्री को पढ़ा लिखा अवश्य होना चाहिये ताकि धर्म और कर्तव्य को समझ सके

और घर की आमदनी व खर्च का हिसाब रख सके। वह अपने बालकों के मन पर ज्ञान का संस्कार करती है और अपने ही उत्तम उदाहरणों द्वारा उनके आचार को सच्चे सांचे में ढालती है। स्त्री को अपने समय को सदा अच्छे कामो में लगाते रहना चाहिये। घर की हर वस्तु को उपयुक्त स्थान पर रखना चाहिये ताकि तलाश करने में व्यर्थ समय वर्बाद न हो। स्त्री को चाहिये कि वह अपने कपड़ों को स्वच्छ रक्खे और उसके साथ अपने भवन को भी परिष्कृत रक्खे। स्वच्छता और मलिनता का मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्वच्छ घर मे उत्साह की वृद्धि होती है और मलिन घर को देख कर मन भी मलिन होता है। उसे सदा अपने कुल धर्म के अनुसार कार्य करते रहना चाहिये। कभी कोई कार्य अपनी कुल मर्यादा के विरुद्ध नहीं करना चाहिये। घर की शोभा स्त्री से ही होती है स्त्री ही गृह लक्ष्मी और अन्नपूर्णा कहलाती है। नम्रता और सौम्यता को उसके सरपर वैभव के मुकुट की तरह शोभा देते रहना चाहिये, उसका हृदय नेकी का घर होना चाहिये तब वह दूसरो से वदी की आशा नहीं कर सकती।

ऐसी गुणवती स्त्री को पाकर उसके पति देव और उनके स्वजनसम्बन्धी सदा सुखी रहेगे और वह अपने समाज व देश के वास्ते एक आदर्श रूप बन जायगी।

पति को अपनी अर्धाङ्गिनी को सदा संतुष्ट रखना चाहिये। उसे जो सामान व चीजो की आवश्यकता हो उसे शीघ्रातिशीघ्र पूरी करते रहना चाहिये। अगर स्त्री से कोई भूल या गलती हो जाय तो प्रेम पूर्वक एकान्त मे समझा देना चाहिये। उसके साथ कभी कटु शब्द का प्रयोग व व्यवहार नहीं करना चाहिये। स्त्री को सदा सदुपदेश और सद्गुण देते रहना चाहिये। सदा स्त्री के स्वास्थ्य और वस्त्रा भूषण का ख्याल करते रहना चाहिये। स्त्री को कभी

धोखा नहीं देना चाहिये। सदा उसे अपना विश्वासपात्र समझना चाहिये। उससे कोई बात न छिपाना चाहिये। विश्वास करने से विश्वास बढ़ता है। मान देने से ही पुरुष व स्त्री सम्मान भाजन बनती है। अपने सम्मान से दूसरे के सम्मान का ध्यान रखना चाहिये। ऐसा करने से कभी लड़ाई झगड़े की सम्भावना नही रहती और जीवन सुखमय बन जाता है। इसके अतिरिक्त पति और पत्नी को एक ऐसा सम्मिलित धेय रखना चाहिये जिसमें कि दोनों प्रेम पूर्वक भाग ले सके ऐसा करने से परस्पर प्रीति बढ़ेगी। यह ध्येय चाहे समाज सेवा हो चाहे फोटोग्राफी चाहे संगीत हो। पंडित लोग अपना समय साहित्य संगीत और कला के अनुशीलन मे बिताते हैं और मूर्ख लोग अपना समय कलह और निद्रा में बिताते हैं।

घर में पति पत्नी के अतिरिक्त भाई, बहन, माता, पिता आदि और भी व्यक्ति हैं सभी के साथ प्रेम पूर्वक वर्त्ताव करना चाहिए। सब ही के हित और आराम की चिन्ता रखना चाहिये। जो जितना बड़ा हो उसका उतना ही बड़ा उत्तरदायित्व है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने क्या ही अच्छा कहा है:—

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कौं एक।
पालै पोषै सबनि कौ, तुलसी सहित विवेक॥

घर के मालिक का बच्चों के प्रति विशेष उत्तरदायित्व है। बच्चे हमारे कारण संसार में आते हैं। हमको चाहिये कि हम उनको संसार मे लाकर बेफ़िकर न हो जायें। बाल्यकाल मे वह स्वयं अपने हित अनहित का ख्याल नहीं कर सकते। किन्तु जैसे वे बालकपन में बन जाते हैं वैसे ही वह जीवन भर रहते हैं। जो लोग अपने बालकों को सदभ्यास नहीं डालते वह समाज के बड़े

शत्रु हैं। बच्चों के भरण पोषण, स्वास्थ्य और स्वच्छता, शिक्षा और आचार विचार का पूरा २ ध्यान रखना चाहिये। संक्षेप में समाज रूपी गाड़ी को सुचारु रूप से चलाने के लिये निम्न लिखित बातें अत्यन्त आवश्यक हैं।

१—सदा स्त्री पुरुष को प्रेम पूर्वक रहना चाहिये।

२—सदा सत्य बोलना, दूसरों के साथ हमदर्दी करते रहना चाहिये। विश्वासघात, क्रोध, लोभ, मोह, मान न करना चाहिये।

३—साधु गुणी महात्माओं का सदा आदर सत्कार करते रहना चाहिये।

४—नित्य प्रति कम से कम एक घंटे अपने इष्टदेव का ध्यान तथा अपने कर्त्तव्यो पर विचार करते रहना चाहिये।

५—सदा आमद व खर्च का हिसाब रखना चाहिये। कभी आमद से ज्यादा खर्च न करना चाहिये। सदा कुछ न कुछ धन वक्त जरूरत के वास्ते बचाते रहना चाहिये।

६—सदा सदाचारी रहना चाहिये। अपनी स्त्री के सिवाय सबको अपनी माता, बहिन व बेटी के तुल्य समझना चाहिये। सत्य का व्यापार करना चाहिये। कभी अन्याय से पैसा नहीं कमाना चाहिये।

७—बाहरी आडम्बर, दिखावे और फ़ैशन से सदा दूर रहना चाहिये।

८—खान, पीन, रहन सहन सभी सादे होने चाहिये। कभी कोई नशा नहीं करना चाहिये और किसी क़िस्म का व्यसन नहीं करना चाहिये।

९—किसी जीवकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। सदा दया भाव रखना चाहिये।

१०—अधिक से अधिक जितना हो सके दान पुण्य करते रहना चाहिये।

वानप्रस्थ आश्रम

यह आश्रम, देश, जाति और समाज के वास्ते बड़ा उपयोगी है। समयानुसार इस आश्रम को बजाय पचीस वर्ष के पन्द्रह वर्ष का कर दिया है। इसमें मनुष्य को पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करना चाहिये अर्थात् अपनी स्त्री तक से सहवास नहीं करना चाहिये और शुद्ध जीवन व्यतीत करना चाहिये। इस जीवन में जिस प्रकार और जहां तक मुमकिन हो वहां तक जाति, समाज और देश सेवा करनी चाहिये। जाति के नवयुवको और विद्यार्थियो को सदुपदेश करना और सदाचारी बनाना चाहिये। अगर समाज मे कोई निर्धन पुरुप हो या तकलीफ से पीड़ित हो तो उसकी गरीबी और दुःख को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। वानप्रस्थी मनुष्य का जीवन सेवा का जीवन होना चाहिये। उसकी जिन्दगी का एक मात्र उद्देश्य केवल समाज सेवा और प्राणीमात्र की रक्षा होना चाहिये। वानप्रस्थ मनुष्य गृहस्थी में इस प्रकार रहता है जैसे पानी में कमल। उसको ममता मोह एकदम अलग कर देना चाहिये और ममत्वहीन जीवन व्यतीत करना चहिये। आज कल समाज व देश की जो अधोगति हो रही है उसका यही मुख्य कारण है कि लोग इस अवस्था में भी समाज और जाति सेवा के कार्य्य करने के वजाय गृहस्थी के झंझटों मे फँसे रहते हैं। उनका कर्त्तव्य है कि जब वे गृहस्थाश्रम मे हों, अपने पुत्र को इस प्रकार तैयार करदें कि वह उनके वानप्रस्थ आश्रम को लेने के बाद भली भांति

गृहस्थी के कार्य्य को सम्हाल सकें। इस अवस्था मे चौथे आश्रम के वास्ते थोड़ी थोड़ी तैयारी करते रहना चाहिये अर्थात् कम से कम दो चार घंटे रोज अपने भगवान के ध्यान मे व मनुष्य जीवन को सुधारने के वास्ते देते रहना चाहिये।

एक वानप्रस्थी को निम्नलिखित बातें अवश्य करनी चाहिये।

१—अहिंसावृत्ति धारण करना अर्थात् प्राणीमात्र पर दया-भाव रखना चाहिये।

२—हर प्रकार से सत्य बोलना, काम, क्रोध, मान और माया नहीं करनी चाहिये।

३—पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालना चाहिए, किसी क़िस्म का नशा और न किसी किस्म का शौक़ या विषय सेवन करना चाहिये।

४—अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य लोक सेवा रखना चाहिये।

५—अपने पास धन नहीं रखना चाहिये। किसी वस्तु की जरूरत हो तो बग़ैर किसी की आज्ञा के नहीं लेनी चाहिये।

६—सदा शुभ भावना रखनी चाहिये अर्थात् किसी के खिलाफ स्वप्न मे भी द्वेप भाव तक नही लाना चाहिये।

७—दुःखियो, अनाथों, विधवाओ, बालकों, वृद्धों और कमजोरों को जिस प्रकार हो उस प्रकार तन, मन और धन से सदा सेवा भक्ति करते रहना चाहिये।

सन्यास आश्रम

यह आश्रम स्वयं अपनी आत्मा के उद्धार के लिये है। जो आदमी इस आश्रम में पहुँच जाता है वह घर को छोड़ देता है। भिन्न भिन्न धर्मों ने आत्म शुद्धि अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के भिन्न २ मार्ग बतलाये हैं।

यह भेद लोगों की रुचि, प्रकृति, लाभ और व्यवस्था भेद के कारण रक्खा गया है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्थिति के अनुकूल अपना मोक्ष मार्ग ग्रहण करता है।

विष्णु के उपासक केवल भक्ति को मोक्ष के प्राप्त करने का साधन मानते हैं। दूसरे लोग तपस्या द्वारा शरीर को कष्ट देकर या धन आदि लगाकर यज्ञ, दानादि करके मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। बौद्ध लोग निर्ममत्व और एकान्त मे शान्ति पूर्वक वासना-हीन जीवन व्यतीत करने को मोक्ष के प्राप्त करने का उपाय मानते हैं। जैनी साधु या मुनि अवस्था ग्रहण करने के पश्चात सर्व प्रकार की हिंसा का त्याग करके और सर्व प्रकार से क्रोध, मान, माया और लोभ को त्याग करके और ज्ञानयुक्त तपस्या, ध्यान, सज्झाय करके मोक्ष को प्राप्त करना मानते हैं। इसके अलावा जैन धर्म में अगर कोई साधु बनने में असमर्थ है तो घर को छोड़ कर स्थानक अथवा उपाश्रय में रहकर निर्ममत्व श्रावक पडिमा धारण करके मोक्ष के मार्ग को प्राप्त करते है। यह आत्म-साधन का ही मार्ग है परोपकार का नहीं। कारण कि इस आश्रम में उस व्यक्ति को सिवाय अपनी आत्म-मुक्ति के कोई और चिन्ता नहीं रहती। इस आश्रम में दुनियादारी के सब कार्य्य सर्व प्रकार से छोड़ देने पड़ते हैं। यहाँ तक कि मरणान्त समय अपने शरीर तक से ममत्व को त्याग कर देना पड़ता है। इस अवस्था में सिवाय ज्ञान, ध्यान, तप, शुभ भावना के और कुछ नहीं करना पड़ता। यह कार्य एकान्त स्थान पर ही अच्छी तरह हो सकता है। इस कारण सन्यासी लोग घर को छोड़ कर एकान्त स्थान या जंगल वा पहाड़ों में वास करते हैं। चौरासी लाख योनि में सिर्फ एक मनुष्य योनि ऐसी है जिसको मोक्ष प्राप्त होती है अर्थात् आवागमन् के बन्धन

से मुक्ति पाता है अगर यथार्थ में देखा जाय तो इस आश्रम से उत्तम और महत्व का दूसरा कोई आश्रम नहीं है।

सन्यास आश्रमी को निम्न लिखित बातें ग्रहण करना आवश्यक है।

१—सब प्रकार का अहिंसा व्रत धारण करना अथवा मन, वचन, काया से सब प्रकार के जीवों पर दया करना।

२—सब प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष से दूर रहना अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति सम भाव रखना।

३—जैसा रूखा सूखा खाने को मिल जाय उस पर सन्तोष करना और अगर न भी मिले तो भी सन्तोष पूर्वक ज्ञान ध्यान करते रहना।

४—संसार की किसी वस्तु पर मोह या ममत्व नहीं रखना अर्थात् निर्मोही रहना।

५—अपनी इन्द्रियो को सब प्रकार के व्यसनों से दूर रखना अर्थात् स्वप्न में भी मन, वचन व काया से किसी बुरी बात या कुव्यसन पर ध्यान नहीं देना।

६—स्वच्छ और पूर्ण आचार युक्त जीवन व्यतीत करना अर्थात् कोई भी ऐसी बात नहीं करना जिससे जीवन मलीन हो।

७—संसार की सब वस्तुओं और भोगों का मन, वचन, काया से त्याग करना यहाँ तक कि अपने शरीर को भी त्याग देना अर्थात् सन्यास ग्रहण करना भगवान के चरणों में ध्यान रखते हुये, प्राणीमात्र से क्षमा माँगते हुये और अपने बुरे कर्मों पर पश्चाताप करते हुये शान्ति पूर्वक प्राणों का त्याग करना।

मनुष्य ही अपने भाग्य का विधायक है

आज कल आपस मे प्रायः ऐसा कहा और सुना जाता है कि बहुत खराब समय आ गया है और अगर कोई नाकामयाबी, मुसीबत, तकलीफ़ आजाती है या मृत्यु हो जाती है तो यही कहते हैं कि ईश्वर को ऐसा करना मंजूर था। यह तो आप जानते हैं कि संसार मे प्राणी मात्र में मनुष्य बड़ा चतुर है। इस कारण अपनी कमज़ोरी और कुकर्मों के फल को छिपाने के ख्याल से वह अपनी सारी नाकामयाबियों को समय के या ईश्वर के माथे मढ़ता है। इसी प्रकार कहना अपने को धोका देना या अपनी कमज़ोरियों अथवा आलस्य को छिपाना है। वास्तव में न समय में कोई फ़र्क़ आया है और न ईश्वर कुछ करता है कारण कि सूर्य्य सदा की भांति पूर्व से निकलता है और पश्चिम में छिपता है। जाड़े मे जाड़ा, गर्मी में गर्मी, बरसात मे बरसात, शरद मे शरद इत्यादि ऋतुऐं अपने समय पर आया करती हैं। हवा का बहना, धूप का निकलना, चन्द्रमा का घटना बढ़ना, समुद्र की लहरों का उठना, तारागण का निकलना सदा समयानुसार हुआ करता है। इससे स्पष्ट है कि समय में कोई हेर फेर नहीं हुआ है। अगर परिवर्त्तन हुआ है तो हमारे आचरणों और कर्त्तव्यों में। उसको

छिपाने के वास्ते हम यह कह दिया करते हैं कि समय पलट गया है या ईश्वर को ऐसा ही करना मंजूर था। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा—'दैव दैव आलसी पुकारा'।

संसार मे सदा से यह दस्तूर चला आता है कि जिन जिन नियमो के पालन के लिये पूर्ण नियन्त्रण या अंकुश रहता है उनका यथोचित पालन हुआ चला जाता है। जहां उनके पालन कराने में लापरवाही और ढीलढाल हुई वहां उनका दुरुपयोग होने लगता है। प्राचीन काल में और कुछ सदी पहले तक आचार विचार और नियमो अथवा मर्यादा के अनुसार चलने का भी यथार्थ ध्यान रक्खा जाता था। राजा, प्रजा, समाज, जाति, धर्म और सम्प्रदाय अपने अपने नियमों के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन किया करते थे। यह मानी हुई बात है कि सब कालों में अच्छे या बुरे आदमी हुआ करते हैं। जब अच्छे आदमियों की संख्या अधिक हुआ करती है तो वह समय अच्छा समय कहलाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय जैसे मनुष्य होते हैं, उन्हीं के अनुसार समय अच्छा या बुरा कहलाता है। पर वास्तव में समय सदा एकसा रहता है। जिस प्रकार जिस अच्छे या खराब घी के कारण हांडी अच्छी बुरी कही जाती है उसी प्रकार आदमियों के अच्छे या बुरे होने के कारण समय अच्छा या बुरा कहा जाता है। प्राचीन समय में अच्छे आदमियों की संख्या ज्यादा थी, इस कारण हम उसको अच्छा समय कहते हैं और वर्त्तमान समय में अच्छे आदमियों की संख्या कम है इस कारण हम इसको बुरा समय कहते हैं। पर हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि समय को अच्छा या बुरा बनाने वाले केवल मनुष्य ही हैं।

प्राचीन-समय में राजा अपने प्रजा की जी जान से रक्षा किया करता था, यहां तक कि रात के समय में वह भेप बदल कर देखा

करता था कि प्रजा का कोई मनुष्य दुःखी तो नहीं है। जो प्रजा-जन दुःख या मुसीबत में हुआ करते थे उनकी सहायता की जाया करती थी। प्रजा भी अपने कर्त्तव्यों का पालन किया करती थी। हर एक जाति व समाज मे पंच अथवा चौधरी हुआ करते थे। बड़े बड़े न्यायी और निःस्वार्थ पुरुष हुआ करते थे। वे लोग जहां कही समाज व जाति के मनुष्य को बेक़ायदे चलते देखते उसे तुरन्त राह-रास्त पर ले आया करते थे और अगर कोई नहीं मानता था तो उसे दण्डित करते थे। उसका परिणाम यह हुआ करता था कि कुपथ मे जाने की किसी व्यक्ति की हिम्मत नहीं हुआ करती थी। इस प्रकार सारी जाति व समाज अपने कर्त्तव्य पथ पर रहा करती थी। जिसका जैसा धर्म वा सम्प्रदाय हुआ करता था वह उसी के अनुसार चला करता था। अगर गुरु राहेरास्त पर नहीं होता था तो उसे नम्रता के साथ अथवा प्रिय शब्दो में राहेरास्त पर ले आते थे। अगर शिष्य कुपथ पर चलता था तो गुरु उसे सप्रेम सुमार्ग पर ले आते थे। इस प्रकार हर धर्म व सम्प्रदाय के मनुष्य मर्यादा के अनुसार धर्मावलम्बन किया करते थे। इन सब बातों का यह परिणाम हुआ करता था कि राजा, प्रजा, समाज व जाति वाले या धर्मावलम्बी शान्ति व सुख का अनुभव किया करते थे। पर जब से मनुष्यों ने अपने कर्त्तव्यों का पालन करना छोड़ दिया तब से दुःख और अशान्ति का साम्राज्य होगया है।

जब कभी मैं किसी व्यापारी या तिजारती से मिलता हूं तो वह यही कहता है कि अब समय बहुत ख़राब आगया है। हम जो व्यापार करते थे उसमें नुक़सान ही नुक़सान नज़र आता है। जहां देखो वहां आसामी रक़म मारे लेते हैं और काम फेल किये देते हैं। इस बात के विचार करने पर कि इस स्थिति के कारण कौन हैं? हमको यही उत्तर मिलता है कि इसके कारण हम ही

हैं। हम यह नहीं सोचते कि सट्टे वग़ैरः का काम या अपने वित्त से ज्यादा काम करना या लालच में पड़ कर अकरणीय काम का करना, जान बूझ कर हानि को निमंत्रण देना है।

कुछ समय पहले तक सट्टे या वायदे का काम करना अत्यन्त बुरा समझा जाता था। सदा वित्त के अनुसार काम किया जाता था जिसका परिणाम यह होता था कि कभी कोई आसामी कमी में नहीं आती थी। इसके अलावा किसी का रुपया रखना या काम फेल करना महा पाप समझा जाता था। कारण कि हर एक व्यापारी व रोज़गारी इस क़िस्म के कार्यों को महा घृणित और बुरा समझा करता था। संयोग से यदि किसी का काम फेल हो जाता था तो वह अपना मुँह दिखाना बुरा समझता था। जब कोई जान बूझ कर रुपया रख कर दिवाला निकाला करता था तो कोई भी उसकी मदद नहीं करता था, लोग उसे पास बैठने तक नहीं देते थे। पर आज कल तो बिलकुल इसका उल्टा देखा जाता है। आज कल अगर कोई किसी की रक़म मारता है तो ऐसा करना मामूली बात समझी जाती है। अब धर्म का भय उठ गया। वह जहां कहीं जाता है वहां उसके साथ बजाय घृणा के प्रेम से बातचीत की जाती है क्योंकि उस समय यह ख्याल किया जाता है कि इसने हमारा तो कुछ नहीं रक्खा है, हमें इसका बुरा बनने की क्या जरूरत है। इसका परिणाम यहां तक होगया है कि किसी की रक़म न देना या काम फेल करना एक साधारण सी बात होगई है। आज कल काम फेल करने वाले भी ऐसे चतुर हो गये हैं कि वे नये काममें उन्हीं व्यापारियों का आश्रय लेते हैं जिनका कुछ नहीं देना होता है। बाद में वे फिर काम करते हैं और फिर दोबारा

काम फेल करते है और तब भी हमारे बहुत से व्यापारी उनका साथ देते हैं। आज कल लोग जानते हुये भी स्वार्थवश यह भूल जाते हैं कि एक पापी नाव को डुबा देता है। अगर एक मनुष्य आज मेरे साथ एक बुराई करता है तो यह निश्चय है कि कल वही बुराई वह दूसरे के साथ करेगा। अगर हम अपने व्यापार रूपी शरीर को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो यह निहायत जरूरी है कि अगर कोई अंगरूपी व्यापारी किसी का रुपया रखता है या काम फेल करता है तो उसे फ़ौरन शरीर से काट कर प्रथक् कर देना चाहिये वरना वह सारे व्यापार रूपी शरीर को सड़ा देगा। व्यापारियों व दुकानदारों को संगठित होना चाहिये और निः स्वार्थ भाव रख कर अच्छे नियम बनाने चाहिये और फिर निष्पक्ष होकर उन नियमो का पालन करना चाहिये जिससे किसी व्यापारी या दुकानदार की हिम्मत न पड़े कि वह काम फेल कर किसी का रुपया मार ले। आज कल प्रायः अपनी थोड़ी सी कमज़ोरी के कारण या स्वार्थ की वजह से बड़े बड़े नुक़सान हो जाया करते हैं। अगर हम व्यापारीगण मुस्तैदी के साथ नियमो का पालन करे तो कोई वजह नहीं कि कोई किसी की रक़म मार सके या काम फेल कर सके।

ऐसी अवस्था में किसी को यह कहने का अवसर नहीं मिलेगा कि समय ख़राब है। प्रिय बन्धुओ! समय के बिगाड़ने और बनाने के कारण हम स्वयं ही हैं।

आज कल जो अपने को उच्च जाति वाले कहते हैं उनमें से बहुतों के आचरण ऐसे गिरे हुऐ हैं कि जिनको सुनकर कानों में उंगली देनी पड़ती हैं। वैसे तो वर्तमान समय में उच्च जाति में अंकुश या नियन्त्रण रहा नहीं। अगर कुछ है भी तो पञ्चोंका

तथा अन्य माननीय पुरुष बुरा बनने के ख्याल से या इस विचार से कि इस ज़माने में उनकी कौन मानेगा चुपचाप रहते हैं। बात भी कुछ ठीक सी प्रतीत होती है कि आजकल कुछ नातजुर्बेकार और मनचले लोग फ़ौरन हर बात का ख़ासकर बुरी बात का पक्ष ले लेते हैं। ज्यादातर लोग बुरे बनने के ख्याल से दुराचारी से न तो कुछ कहते हैं और न उसका तिरस्कार करते हैं। इसीलिए दुराचारियों की हिम्मत बढ़ती जाती है। इस प्रकार ज्यादातर तमाम जातियाँ जो अपने को उच्च कहती हैं उनकी अवस्था दिनो दिन गिरती चली जाती है। इसी का यह परिणाम है कि आज एक नहीं अनेक खान्दान बर्बाद होगये हैं और टुकड़े टुकड़े के मुहताज होगये हैं। वे दर दर मारे मारे फिरते हैं। अगर समाज या जाति के हितैषी समाज वा जाति की अवस्था सुधारना अपना कर्त्तव्य समझते है तो पहिले उन्हें अपनी अवस्था निर्मल या शुद्ध करनी चाहिये क्योंकि उपदेश त्यागी पुरुष का ही असर करता है फिर प्रेम से और अगर ज़रूरत हो तो सख़्ती के साथ नियन्त्रण क़ायम करना चाहिये। जिस प्रकार एक वैद्य बग़ैर कड़वी औषधि के दिये रोगी या पुराने बुखार को नहीं हटा सकता उसी प्रकार समाज की पुराने बुख़ार रूपी कुप्रथायें भी बिना सख़्त नियन्त्रण रूप औषधि के नहीं हटाई जा सकती।

इसके अलावा आजकल बहुत से लोग सगाई, ब्याह, दष्टौन और नुक़ता आदि मौक़ों पर अपने वित्त से कहीं ज्यादा रुपया ख़र्च कर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनका कारोबार फ़ेल होजाता है और वह टुकड़े टुकड़े को मुहताज होजाते हैं।

इसके अतिरिक्त हमारी समाज में रुपया देकर शादी करना या रुपया लेकर लड़की बेचना या छोटी बालिकाओं को बड़े आयु वाले वर के साथ व्याह देना या बचपन में शादी कर देना, जिसके कारण छोटी छोटी बालिकायें विधवा हो जाती हैं या कमजोर, निर्बल अल्प आयु वाली सन्तान होती है आदि दुष्कर्म प्रचलित हैं। नवयुवको और विद्यार्थियो को अच्छा संग का न मिलने के कारण उनमें बुरी टेवें पड़ जाती हैं जिनके कारण बहुत से नवयुवक अपने जीवन को नष्ट कर बैठते है यहाँ तक कि बहुत से तो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इन्हीं के कारण हमारी अवनति है।

लोगो में और भी बहुत सी कुरीतियाँ या ऐसे बुरे आचरण पड़गये हैं कि जिनके कारण अवस्था दिनों दिन गिरती जाती है। इसी से प्रायः यह सुनने में आता है कि समय के प्रताप से नाज, घी, दूध इत्यादि में भी कमी आगई है। इस प्रकार कह कर मनुष्य अपनी काहिली और कमजोरी को समय के नाम पर टालना चाहता है। वास्तव में बात यह है कि खेतो में अच्छा बीज बोया नहीं जाता है न अच्छी खाद दी जाती है और न खेतों की अच्छी कमाई की जाती है। इन कारणों से खेतो में कम और कमजोर अन्न पैदा होता है। पशुओं को भरपेट चारा व अच्छी खुराक नहीं मिलती और न अच्छे विजार मिलते हैं तो फिर ऐसी अवस्था में अच्छा वलिष्ट और ज्यादा दूध कहाँ से आये। जब दूध अच्छा नहीं होता तो अच्छा घी कहाँ से मिले।

दो सौ ढाई सौ वर्ष पूर्व तक भारत मे अच्छा और परिपक्व अन्न और दूध होने का मुख्य कारण यह था कि यहां पशुधन बहुतायत से था। जिससे खेतों को काफी खाद मिलती थी, उन्हे

जोतने को काफ़ी बैल थे और पशुओं को भरपेट चारा व खुराक़ मिलती थी जिसकी वजह से सारे खाद्य पदार्थ अच्छे व वलिष्ट होते थे। उस समय में प्रत्येक गांव में हज़ारों मवेशियां हुआ करती थीं, लेकिन आजकल भारत के पशुधन का सत्यानाश कर डाला गया है। यहां तक कि जिन गांवों में हज़ारों मवेशियां रहती थीं उनमें मुश्किल से दस बीस पशु देखने को मिलते हैं।

इसी प्रकार आजकल यह भी सुनने में आया करता है कि समय के प्रभाव से मनुष्य बहुत कमज़ोर होगये हैं और आयु भी बहुत कम होगई है, इसका भी मुख्य कारण मनुष्य ही है न कि समय।

पहले पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन किया जाता था, अब बारह चौदह अधिक से अधिक सोलह वर्ष की उम्र में शादी कर दी जाती है। पहिले परिपक्व वीर्य की सन्तान उत्पन्न होती थी आजकल अपरिपक्व वीर्य की सन्तान पैदा की जाती है। पहिले घी, दूध, काफ़ी खाने को मिलता था, आजकल दर्शन करने तक को नहीं मिलता। अगर किसी को मिलता भी है तो शुद्ध नहीं मिलता है। पहिले नवयुवकों और विद्यार्थियों में बुरी आदतें व टेव नहीं होती थीं पर आजकल ये बातें बहुतेरे नवयुवकों में देखी जाती हैं। पहिले नवयुवकों को कोई चिन्ता नहीं थी पर अब बालकपन ही से चिन्ता घेर लेती है। ऐसी अवस्था में अगर मनुष्य कमज़ोर और कम आयु वाले हों तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। अगर यही हालत क़ायम रही तो इससे भी और कमज़ोर और कम आयु वाले मनुष्य हुआ करेंगे।

हम आये दिन देखते हैं कि समाज में झूंठ बोलने वाले पुरुषों को, विश्वासघात करने वाले व्यक्तियों को,

कुमार्ग चलने वाले आदमियों को, धर्म स्थान वा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का रुपया खाने वाले प्राणियों को, कुमार्ग और कुरीतियों में फ़िजूल खर्च करने वाले महानुभावों को, परस्त्री गामी को, काम फेल करने वाले को, किसी की धरोहर या रक़म मारने वाले को, घृणा की दृष्टि से देखने और बहिष्कार करने के बजाय अपनाया जाता हो या पास बैठने का मौक़ा दिया जाता हो ऐसो जाति की अवस्था दिनों दिन मृतक समान न होगी तो किस की होगी, जहां टका सेर भाजी टका सेर खाजा अन्धेर नगरी चौपट राजा हो, जहां जवाहिर और घुंघुची एक भाव बिकते हों वहां अगर अवस्था ख़राब होती जाय तो क्या आश्चर्य की बात है। पर चूंकि मनुष्य एक चतुर प्राणी है इसलिये वह अपनी बुराइयों और कमजोरियों को दूसरों अर्थात् समय और ईश्वर पर रखकर अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहता है।

समय सदा अच्छा रहता है, ईश्वर बड़े दयालु और कृपालु हैं।

समय या ईश्वर को अच्छा या बुरा बनाने वाले केवल एक मात्र मनुष्य ही हैं। इस कारण अगर आप शुभ समय लाना चाहते हैं तो आप शुभ आचरण कीजिये और कर्त्तव्य पथ पर आइये। ऐसा होने से हमको समय पर अपने दोषारोपण करने का मौक़ा नहीं प्राप्त होगा। सदा अच्छा ही अच्छा समय रहेगा।

हमी अपने भाग्य के विधायक हैं। यदि हम आलसी हैं, दुराचारी हैं तो हमारे सामने हमारे कर्मों के फल स्वरूप कठिनाइयां उपस्थित होंगी। जैसा हम करते हैं वैसा ही हमारे लिए संसार बनता है। जैसा हम बोते हैं वैसा ही काटते हैं। बबूल के बीज से

मेवा नहीं उत्पन्न हो सकती। यदि हम सुन्दर भविष्य चाहते हैं। यदि हम भाग्य को अपने अनुकूल देखना चाहते हैं तो निरन्तर आत्म संयम के साथ परिश्रम करना चाहिए। ईमानदारी से किया हुआ काम कभी निष्फल नहीं जाता है। जहां पर हम काम से बचना चाहते हैं वहीं पर कमजोरी आजाती है वहीं हमारे पतन का सामान हो जाता है। हम ही अपने पतन और उत्थान के कारण हैं हम ही अपने को उठा सकते हैं और हम ही अपने को गिरा सकते हैं। हम ही अपने शत्रु हैं और हम ही अपने मित्र है। आत्मा का आत्मा ही बन्धु है और आत्मा का आत्मा से ही उद्धार होता है।

उद्धरेदात्मनात्मनं नात्मान मवसादयेत्।
आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

जीवन साफल्य सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त

—:o:—

१—यदि कर्त्तव्य रूप व्रत पालन की उत्कण्ठा है तो लेशमात्र भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि ईर्ष्या सेवा-रूप द्वार को बन्द कर सफलता के भवन मे हमारा प्रवेश दुष्कर बना देती है। दूसरे को उन्नति शील, हर्षित अथवा आदर सम्मान पाते हुए देख कर हमको शुद्ध हृदय से प्रसन्न होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य्य को उदय देख कर कमल प्रसन्न होता है, बसन्त ऋतु का आगमन देख कर वृक्ष नवीन पल्लवो तथा लताओं, पुष्पों द्वारा रोमाञ्च को धारण करता है, मेघ की गर्जन सुन कर मयूर मत्त होकर नृत्य करने लगते हैं, पपीहा मेघ की बिन्दु पाकर अति आनन्दित होते हैं उसी प्रकार हमको भी अपने भाइयो का अभ्युदय देख कर हर्ष से पुलकायमान होना और अपने जीवन को सफल और सुखमय बनाना चाहिये।

२—यदि तुम दूसरों से ईर्ष्या करोगे तो दूसरे भी तुमसे ईर्ष्या करेंगे। लेकिन अगर तुम दूसरो की उन्नति मे हर्ष मनाओगे तो दूसरे भी तुम्हारी उन्नति मे हर्ष मनावेगे अर्थात् ईर्षा का फल ईर्षा और हर्ष का फल हर्ष है। यदि तुम्हारी हार्दिक इच्छा ऐसी है कि तुम्हारी सम्पत्ति से दूसरे हर्षित हों, कोई भी ईर्षा न करे तो उचित है कि तुम दूसरों की ईर्षा न कर हर्ष करो।

३—सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है। सब जीव तुम्हारी तरह सुख की इच्छा करते हैं तथा दुःख, अनादर और मृत्यु से मुँह मोड़ते हैं। तुम जिस वस्तु को चाहते हो उसे प्रसन्नता पूर्वक दूसरे को तत्काल प्रदान करो। भाग्य बल से तुम्हें वह भरपूर मिलेगी।

४—जिस द्रव्य से दुःखी जीवों का दुःख दूर नहीं किया गया उस द्रव्य से क्या फल? जिस शरीर से पीड़ित प्राणियों की रक्षा नहीं हुई उस शरीर से क्या लाभ। वह शक्ति किस काम की, जिससे करुणा पूर्वक दुःखी जीवों का उद्धार न किया जा सके? उस बुद्धि से क्या फल जिसने कर्म का नाश करने वाला मोक्ष मार्ग नही पहचाना।

५—राज्य लक्ष्मी, कीर्ति, सुख, विद्या, मित्र और विनीत पुत्र जो कुछ इस समय प्राप्त हैं वे सब पुण्यरूप वृक्ष के फल हैं। यदि इस पुण्य वृक्षको आप सदा हराभरा रखना चाहते हैं तो निरन्तर करुणा जलसे इसका सिञ्चन कीजिये अन्यथा वह शीघ्र सूख जायगा और आपकी सुख सामग्री अदृश्य हो जायगी।

६—दीन, अपाहिज, भाग्यहीन, दरिद्री, रोगी, वृद्ध, विधवायें अनाथ बालक किसी से सताये गये निर्बल मनुष्य तथा दुर्भिक्ष के समय अन्न घास के बिना, भूखो मरने वाले प्राणी ये सब करुणा के पात्र हैं तथा धनवानों से आर्थिक सहायता की इच्छा रखते हैं, जिनकी सहायता करना धनिकों का कर्त्तव्य है।

७—देश सेवा, मानव समाज का उपकार और धर्म प्रचार करने के लिये हृदय में सर्वदा विशाल सहन शीलता रखना आवश्यक है। यदि शत्रु मारने को भी उद्यत हो तो भी कोप अथवा

खेद न करो और किञ्चिन्मात्र धैर्य्य को न छोड़ो तब ही काम की सिद्धि हो सकती है।

८—पाप का नाश करना चाहिये किन्तु पापी का नाश करना अनुचित है क्योंकि पापी मनुष्य का घात करने से हिंसा होती है और हिंसा से पाप की वृद्धि होती है। वस्त्र आदि का मैल दूर करने के लिए वस्त्र का छेदन करना युक्ति सगत नहीं, किन्तु जल से वस्त्र का मैल दूर करना ही वाञ्छनीय है। इसी प्रकार कोमल वचनो द्वारा पापी को पाप से छुड़ाना चाहिये।

९—जैसे वस्त्राभूषण से सजी हुई स्त्री शील विना शोभा नहीं पाती वैसे ही व्यावहारिक शिक्षा भी धार्मिक शिक्षा के बिना शोभा नहीं पाती। जैसे खोटी मुहर खरे स्वर्ण बिना सिक्के मात्र से मूल्य नहीं पा सकती उसी प्रकार धर्म विना सब कलाओ मे निपुण होना शोभा नहीं देता।

१०—जिस धार्मिक शिक्षा से विद्यार्थियो का जीवन धार्मिक, दृढ़, श्रद्धा वाला और सात्विक न बने उस धार्मिक शिक्षा से क्या लाभ? वह चिन्तामणि रत्न किस काम का जिससे मनकी इच्छा पूर्ण न हो, उस कल्पवृच्छ से क्या लाभ, जिससे दरिद्रता रूपी दुष्कर्म नष्ट न हो? अर्थात् धार्मिक शिक्षा ऐसी होना चाहिये जिससे छात्रगण, धार्मिक, श्रद्धालु और सदाचारी बनें।

११—जिसके घर मे रोग या दुःख के समय परिचर्या करने वाला कोई नहीं है तुम्हे उस रोग या दुःख से पीड़ित मनुष्य को चाहे वह वृद्ध हो या तरुण, ब्राह्मण हो या शूद्र, वैश्य हो या क्षत्रिय अपना भाई समझ मीठे वचन, पथ्य भोजन तथा योग्य औषधि द्वारा स्वस्थ बनाना चाहिये। रोगी पास बैठ कर तैल मर्दन आदि अनेक उपचारों द्वारा हृदय से उस का

सेवा करनी चाहिये । सेवा-धर्म तमाम तीर्थ यात्राओं से बढ़ कर है । चौरासी लक्ष जीव योनि मे सिर्फ मनुष्य जन्म ही ऐसा है, जिसके द्वारा सेवा-धर्म किया जा सकता है ।

१२--जिनके घर मे निर्वाह योग्य धन नहीं है तथा उत्तम धन्धा भी नहीं है ऐसे लोग कुटुम्ब वाले होकर भी दुर्भाग्यवश दाताओ के निकट याचना करते फिरते हैं। ऐसी स्थिति में द्रव्य देने से थोड़ा सकट तो निवारण हो सकता है परन्तु ऐसा करने से उनकी आदत सदा के लिए विगड़ जायगी । अतः उन्हे द्रव्य न देकर ऐसे उद्योगो मे लगा देना चाहिये जिससे वे स्वयं अपना निर्वाह कर सके ।

१३—कितने ही मनुष्य जूए या सट्टे से एकदम अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं, कई एक देवताओं को प्रसन्न करना अथवा मंत्र-तन्त्र का साधन कर धनवान बनना चाहते हैं और कितने ही सोना आदि की सिद्धि अर्थात् कीमिया बनाकर दरिद्रता दूर करने मे प्रयत्नशील होते है । ये सब निरुद्यमी लोग गांठ का द्रव्य खोकर दरिद्रता और दुःख का अनुभव करने वाले हैं, सहृदय पुरुषों को उपदेश द्वारा इनका उक्त भ्रम दूर कर उद्यमी बनाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ।

१४--जिस देश के उत्तम अन्न, जल और वायु से हमारा शरीर पुष्ट हुआ है, हमारा कर्त्तव्य है कि उस देश की उन्नति के लिये अपना तन, मन और धन अर्पण करदें । जो भूमि माता के समान पालन पोषण करने वाली है तथा स्वर्ग से भी अधिक सुख देने वाली है, उस भारतमाता का किंचिन्मात्र बुरा चिन्तन करना उसकी सन्तान के लिये महा पाप का कारण है ।

१५—देश में कौन दुःखी है और कौन सुखी है सहृदय पुरुषो को सदा ऐसा विचार करते रहना चाहिये। यदि कोई दुःखी प्रतीत हो और अपने पास उसके दुःख दूर करने का साधन भी हो तो उचित है कि उसका दुःख तुरन्त दूर करदे, कोई मनुष्य जुआ, चोरी आदि दुर्व्यसनो में फंसा हो तो सज्जन पुरुषों का कर्त्तव्य है कि प्रयत्न कर उसे उत्तम मार्ग पर ले आवें, तथा देश, समाज या जाति में कलह मचा हो तो सुयुक्तियो द्वारा उसका मूल कारण मिटा कर शान्ति स्थापित करें।

१६—स्वदेश के उद्योग को उत्तेजना देने के लिये, शरीर की स्वास्थ रक्षा के अर्थ तथा करुणावश अपने देश के गरीब मनुष्यो की दरिद्रता दूर करने के निमित्त प्रत्येक मनुष्य को पहिनने के सब वस्त्र, खाने पीने की सम्पूर्ण सामग्री तथा स्त्री पुरुष के कुल आभूषण इत्यादि समस्त उपयोग मे आने वाली वस्तुयें स्वदेश की बनी हुई खरीदना चाहियें और उन्हीं को काम मे लाना प्रत्येक विचार शील पुरुष का कर्त्तव्य है।

१७—जब कभी अपने देश के किसी भाग में भूकम्प, अग्निकाण्ड, अतिवृष्ट, बाढ़, दुर्भिक्ष, प्लेग, महामारी आदि संहार करने वाली दैविक आपत्तियां उपस्थित हों उस समय पर स्वयं-सेवकों को चाहिए कि वे रक्षा के साधन जुटा कर घटनास्थल पर पहुँचे और आपत्ति-ग्रस्त मनुष्यों की तन मन धन से सहायता करें।

१८—जो प्राणी अपने स्थूल जड़ शरीर को ही अपना मानता है वह अधम से भी अधम है। जो केवल अपने पुत्र, स्त्री आदि अपने कुटुम्बियों को ही अपना समझता है वह अधम है। जो अपने गांव अथवा शहर वालो को अपना मानने वाला हो वह

मध्यम है, जो अपने स्वदेश के मनुष्य मात्रको अथवा जन्म-भूमि को सदा अपने रूप मानने वाला है वह उत्तम है, पर जिस मनुष्य के विशाल हृदय में सारा संसार निज रूप से प्रतिभासित हो रहा है वह सर्वोत्तम पुरुष है।

आचारियो ने कहा है कि:—

१–बुद्धिमान मित्र, २–विद्वान् पुत्र, ३–पतिव्रता स्त्री, ४–कृपालु स्वामी, ५–सोच समझ कर बात कहने वाला, ६–विचार कर काम करने वाला—इन छः से हानि नहीं हो सकती और देखिये:—

१–मित्र वह है जो गाढ़े मे काम आवे, २–अच्छा काम वह है जिससे बड़ाई मिले, ३–नौकर वह है जो आज्ञा माने, ४–विद्वान् वह है जिसको अहङ्कार नहीं है, ५–ज्ञानी वह है जिसने लालच छोड़ दिया है, ६–मर्द वह है जिसने अपनी इन्द्रयों को जीता है, ७–और मंत्री वह है जो मनसा वाचा कर्मणा मालिक का शुभ-चिन्तक है।

विमल विचार

१—प्रत्येक मनुष्य को यह चाहिए कि वह यह विचार करे और सोचे कि उसके मनुष्य जन्म धारण करने का क्या उद्देश्य है ?

२—अपनी शक्तियों पर विचार कर, मनुष्य को अपने कर्त्तव्य पर ध्यान देना चाहिए जिससे उसका जीवन सत्मार्ग का पथिक बना रहे।

३ - मनुष्य को चाहिए कि जब तक अपने शब्दों को तोल न ले, कोई बात मुँह से न निकाले और जो कोई काम करना चाहे उसके सम्बन्ध में पूरा विचार किए बिना उसका आरम्भ न करे। इसका फल यह होगा कि अकीर्ति सदा उस से दूर रहेगी। शरमिन्दगी उसके घर के लिये बेजानी चीज होगी; पश्चात्ताप उसके नजदीक न आवेगा और न शोक की छाया कपोलों पर दिखाई देगी।

४—जो मनुष्य बिना इस बात के सोचे या देखे कि दूसरी ओर क्या है जल्दी मे दौड़कर किसी दीवार को फांद जाता है वह उसके दूसरी ओर के गड्ढे मे गिर सकता है। यही हाल उस मनुष्य का होता है जो बिना नतीजा सोचे ही किसी काम को एक दम कर बैठता है।

५—विनयशील मनुष्य के भाषण से सत्य भी दमक उठता है और जिस संकोच के साथ वह बातचीत करता है उससे उसकी भूलों का दोष नहीं मालूम होता। विनय सत्य का भूषण है।

६—जो दिन बीत गये वे तो सदा के लिये चले गये और आने वाले दिन, सम्भव है, न आवें। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वर्त्तमान समय का सदुपयोग करै। बीते हुये समय पर अफ़सोस न करै और न भविष्य पर अवलम्बित रहै।

७—यह क्षण तो तेरा है। इसके बाद का क्षण भविष्य के गर्भ मे है और तू नहीं जानता कि उसमे क्या होने वाला है। इस कारण जिस किसी काम को करने का तू निश्चय करे उसे शीघ्र कर डाल। जो काम सवेरे ही करने का है उसे शाम पर न छोड़।

"काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल मे परलै होयगी, बहुरि करैगो कब॥"

८—दूसरो का आदर करो। दूसरे भी तुम्हारा आदर करेंगे।

९—यदि मनुष्य को प्रतिष्ठा की प्यास है, यदि उसको प्रशंसा से सुख होता हो तो उसे चाहिए कि जिस धूल से उसका शरीर बना है उससे ऊपर उठै और किसी उच्च तथा महान् उद्देश्य को अपना लक्ष्य बनावै।

१०—इस वटवृक्ष को देखो जिसकी शाखायें अब आकाश तक फैल गई हैं किसी दिन यह पृथ्वी के गर्भ में एक छोटे से बीज के रूप मे था।

११—जो कुछ व्यवसाय तुम करते हो, उसे सर्वोच्च बनाने का प्रयत्न करो। सत्कार्य में किसी को अपने से आगे न बढ़ने दो। इतना होते हुये भी दूसरे की योग्यता या गुणों का द्वेष न करो वरन् स्वयं अपनी ही बुद्धि की उन्नति करो।

१२--दूरदर्शी बनो। संकुचित विचार वाले न बनो। उच्च विचारों को अपने हृदय में अंकित कर रक्खो। दूरदर्शिता के सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं और समस्त सद्गुण उसी के सहारे रहते हैं, वह मनुष्य की पथप्रदर्शिका और सहचरी है।

१३--अधिक बक बक करने से तो पश्चात्ताप करना पड़ता है परन्तु मौनावलम्बन से धर्म और सत्य की रक्षा होती है।

१४--मनुष्य को अपने विषय में बड़ी बड़ी डींगें न मारनी चाहिये क्योंकि इससे वह तिरस्कृत होगा। कोई काम जल्दी २ नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से बड़े बड़े नुक़सान हो जाते हैं।

१५--मित्रता में कड़वी हँसी विष के समान है। जो अपनी जिह्वा को नहीं रोक सकता वह मुसीबत मे फँसे बिना कभी नहीं रह सकता।

१६-मनुष्य को अपनी स्थिति को देखकर चलना चाहिये, इतना ख़र्च नहीं करना चाहिये जिसे वह बर्दाश्त न कर सकता हो। अपनी आमदनी मे से थोड़ा बहुत अवश्य बचाना चाहिये जो बुढ़ापे मे या वक्त़ जरूरत पर काम दे।

१७--मनुष्य मे धैर्य्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। मुसीबत या दु:ख मे इससे बड़ी मदद मिलती है। जिस तरह कि एक ऊँट रेगिस्तान मे परिश्रम, गर्मी और भूख प्यास को सहन करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है और अपने और अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा कर लेता है उसी प्रकार धैर्य संसार की समस्याओं के हल करने मे सहायक होता है।

१८—किसी मनुष्य के उन सुखों को जो हमे ऊपर ही ऊपर दिखलाई पड़ते हैं, देखकर ईर्ष्या न करनी चाहिये क्योंकि हमे उसके दिल के दुःखों का पता नही है।

१९—थोड़े में सन्तुष्ट रहना बड़ी बुद्धिमानी है। जो मनुष्य अपनी सम्पत्ति को बढ़ाता है वह मानो अपनी चिन्ताओ को बढ़ाता है। सन्तोष मानो एक गुप्त धन है। चिन्ता उसका पता कभी पा नहीं सकती।

२०—अगर मनुष्य सम्पत्ति के मोह मे इतना नहीं फँसा है कि जिससे उसके न्याय, सयम, दयालुता या विनय पर पाला पड़ गया हो तो स्वयं लक्ष्मी भी उस सुख से वंचित नहीं कर सकती।

२१—जिस प्रकार आंधी अपने प्रकोप से पेड़ो को चीरती, फाड़ती प्रकृति की आकृति को बिगाड़ देती है या जिस तरह एक भूकम्प अपने क्षोभ से बड़े बड़े नगरो को उलट पलट देता है; ठीक उसी प्रकार क्रोध मनुष्य की आकृति, शोभा और शान्ति को भंग कर देता है और आस पास अनेक उत्पात् उत्पन्न कर देता है। संकट और विनाश तो उसके सिर पर मड़राया ही करते हैं।

२२—प्रतिहिंसा को अपने हृदय में स्थान न दो। वह हृदय को विदीर्ण कर डालेगी और उसकी सत्य प्रवृत्तियो का विनाश कर देगी।

२३—क्रोधी मनुष्य की क्रोध पूर्ण बातों का विनयपूर्वक उत्तर देना आग पर पानी डालने की तरह है। उससे क्रोध की आँच कम होती है और वह शत्रु से मित्र हो जाता है।

२४—लज्जा मूर्खता के पीछे पीछे चलती है और क्रोध पश्चात्ताप के पीछे हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है।

२५—बसन्त जिस प्रकार अपने करों से पुष्प और पराग को भूमि पटल पर फैलाता है, जिस प्रकार मेघ जल सिञ्चन कर शस्य के वैभव को पूर्णता पर पहुँचाता है, उसी प्रकार दया का मन्द मधुर हास्य दुर्भाग्य की सन्तति पर मांगल्य सुमनो की वृष्टि करता है।

२६—जो दूसरो के साथ दया दिखाता है वह मानों स्वयं अपने को दया का अधिकारी बनाता है, परन्तु जिसका हृदय दया शून्य है मानो वह स्वयही दया के योग्य नहीं है।

२७—विचारवान मनुष्य को अपनी अपूर्णता और त्रुटियों का ध्यान रहता है और इसलिये वह नम्रभाव से जीवन व्यतीत करता है। वह स्वयं अपने आन्तरिक सन्तोष के लिये निरन्तर परिश्रम करता है परन्तु मूर्ख अपने ही अन्तःकरण के उथले करने में लगा रहता है और उसकी तहके कंकर-पत्थरों को देख देख कर स्वयं खुश होता है और दूसरो के सामने उन्ही को जवाहिरात बता कर मिथ्या गर्व करता है।

२८—मूर्ख मनुष्य ज्ञान के मार्ग में होते हुये भी अज्ञान के पीछे दौड़ धूप करता है। उसके इस परिश्रम का पुरस्कार है निराशा और शर्मिन्दगी।

२९—विचारवान मनुष्य अपने मनको ज्ञान के द्वारा संस्कृत करता है, कला कौशल की उन्नति करने में उसका मन प्रसन्न रहता है और उनकी सार्वजनिक उपयोगिता उसे सम्मानास्पद बनाती है।

३०—जिस मनुष्य को लक्ष्मी मिली है और वह उसका सदुपयोग करना जानता है तो समझना चाहिये कि उस पर ईश्वर की

विशेष कृपा है। ऐसे लोगों का ही सम्पत्ति वान होना सार्थक है सम्पत्ति उनके सत्कार्य करने में साधक बनती है। वह दीन दुखियोंकी रक्षा करता है और बलवानो के अत्याचारों से निर्बलो को बचाता है। वह उन लोगों की खोज करता है जो दया के पात्र हैं, वह उनके भावों और उनकी आवश्यकताओं का पता लगता है, उनकी छानबीन करता है और उन्हें दुःख से मुक्त करता है सो भी बग़ैर दिखावे व आडम्बर के।

३१—लानत है उन शख्शों पर जो परिमित धन को बटोर कर जमा करते है और अपने स्वार्थ के लिये हृदयहीन होकर दूसरो से बलपूर्वक अपना उत्कर्ष कराते है, अपने बन्धु बान्धवों का सर्वनाश देखकर भी उनका हृदय टस से मस नहीं होता। सम्पत्ति के प्रेम से उनका हृदय कठोर हो जाता है। न तो किसी का विषाद और न किसी की आपत्ति ही उसे द्रवित कर सकती है परन्तु इस पाप का शाप उसके पीछे हाथ धोकर पड़ा रहता है, इससे उसका हृदय निरन्तर भयभीत बना रहता है। उसके चित्त की चिन्तायें और अन्तःकरण की लोभमयी इच्छायें उससे उन मुसीबतो का काफ़ी बदला लेती हैं जो उसने दूसरो के लिये पैदा की हैं।

३२—मनुष्य को अन्न, वस्त्र, मकान, संकटों से रक्षा, जीवन के सारे सुख-साधन और सारी चीजें दूसरो की सहायता से मिलती हैं। इस कारण उसे अपने दीन दुःखी भाइयों को छोड़ कर अकेला इनका उपभोग नहीं करना चाहिये। इस कारण उसका यह कर्त्तव्य है कि वह मनुष्य जाति का मित्र बने क्योंकि समाज का उसके साथ स्नेहभाव रखने में ही उसका हित और कल्याण है।

३३—समाज की शान्ति न्याय पर अवलम्बित है और व्यक्तियो का सुख उनकी सम्पत्ति से न्याय पूर्वक लाभ उठाने मे है। इस लिये अपने हृदय की बासनाओं को परिमित बनाना चाहिए जिससे हम दूसरों के साथ न्याय कर सकें।

अपनी जिम्मेदारी को ईमानदारी के साथ निबाहो, जो लोग तुम पर भरोसा करते हैं उन्हें धोखा न दो, विश्वास रक्खो कि धोखा देना घोर पाप है और चोरी भी बड़ा दुष्कर्म है।

जब तुम लाभ के लिये बिक्री करने लगो तो अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर ध्यान दे और परिमित प्राप्ति पर सन्तोप करो, खरीदार के अज्ञान से अनुचित लाभ न उठाओ।

पहिले तो ऋण लेना बहुत निकम्मा काम है और अगर ज़रूरत के वास्ते लेना भी पड़े तो उसको ज्यों त्यों चुकादो। क्योंकि तुम्हारी साख पर विश्वास रख कर साहूकार ने तुमको धन दिया है।

३४—जिस प्रकार पेड़ों की शाखायें अपना रस उन जड़ो को पहुंचाती है जहां से उन्होंने जन्म पाया है, जिस प्रकार नदी अपनी धारा उसी समुद्र मे छोड़ती है जहां से कि उसे जल प्राप्त हुआ है, इसी प्रकार कृतज्ञ मनुष्य का हृदय अपने उपकारकर्त्ता को ओर खिंचता है और वह उस लाभ का बदला देने मे प्रफुल्लित होता है।

३५—उदार पुरुष के कर आकाशस्थ जलद-पटल की तरह हैं जो कि जगतीतल पर फूल, फल और जल की वृष्टि करते है परन्तु अकृतज्ञ मनुष्य का हृदय मरुस्थल की तरह होता है, वह लोभी वर्षा की बूंदोंको पाकर उन्हें अपने हृदय मे सञ्चित कर रखता है पर उपजाता कुछ भी नहीं है।

३६—निष्कपट मनुष्य की जिह्वा का मूल हृदय में होता है; धूर्तता और कपट उसके शब्दो में स्थान नही पाते हैं। असत्य से वह लज्जित होकर नीचे देखने लगता है परन्तु सत्य बोलने मे उसकी आंखे एकसी स्थिर रहती हैं। वह सच्चे मनुष्य की तरह अपने शील के गौरव की रक्षा करता है और कपट से दूर ही से घृणा करता है। कपटी मनुष्यके विचार उसके हृदयकी तह में छिपे रहते हैं. उसके शब्दों मे सत्य का आभासमात्र होता है पर वास्तव में दूसरों को ठगना ही उसके जीवन का उद्देश्य होता है। कपटी मनुष्य इस बातकी बहुत कोशिश करता है कि लोगों की नजरों मे वह सज्जन दिखाई दे पर वह कपट कृत्यो का ही आश्रय लेता है।

३७—उचित अवसर पर कही गई समझ की बात चांदी के घमले मे उगे हुए सोने के पौदे की तरह होती है।

३८—मनुष्य यदि अपने जीवनकाल में से निरुपयोगी अंश निकाल दे; तब क्या शेष बचता है? यदि वह अपने बचपन का, युवावस्था का, निन्दा का, ठलुयेपन का, बीमारी आदि का समय निकाल ले और देखे कि फिर उसके सम्पूर्ण जीवन में कितना उपयोगी समय उसके पास बाकी बच रहता है तो बहुत ही थोड़ा समय बचेगा।

३६—दुःख मनुष्य के लिये स्वाभाविक है और हमेशा उसके आस पास मड़राया करता है पर सुख मुसाफिर की तरह है और कभी२ उससे मिलता है इसलिये उसको अपने समय का उपयोग अच्छी तरह करना चाहिए जिससे दुःख से पीछा छूट जाय और सुख चिरकाल तक उसके पास निवास करे।

४०—दूसरों के सत्कार्यों पर बुरे भावों का आरोप न करो क्योंकि हम उसके हृदय को नहीं परख सकते। पर हां! ऐसा

करने से संसार यह जान जायगा कि हमारा हृदय अलबत्ता ईर्ष्या से भरा हुआ है।

४१—हानिका बदला लेने की अपेक्षा नेकी का उपकार मानने के लिये अधिक तैयार रहो; इससे हमें हानि के बदले अधिक लाभ ही होगा।

४२—घृणा की अपेक्षा प्रेम करने में हमें अधिक तत्पर रहना चाहिये, इससे लोग घृणा की अपेक्षा प्रेम अधिक करेंगे।

४३—हमको दूसरो की स्तुति व बड़ाई करने की उत्सुकता रखनी चाहिये पर निन्दा करने में आतुरता नहीं करनी चाहिये। इससे हमारे सद्गुणो की प्रशंसा होगी और हमारे शत्रुओ की आंखें हमारी त्रुटियो को न देख सकेंगी।

४४—लोभी किसी के साथ नेकी नहीं कर सकता। वह दूसरो के साथ उतना निर्दय नहीं होता जितना कि स्वयं अपने साथ होता है।

४५—हमको अर्थ को प्राप्ति के समय परिश्रमी बनना चाहिये और उसके खर्च के समय उदार होना चाहिये। मनुष्य जितना सुखी दूसरों को सुख प्रदान करते समय होता है उतना और कभी नहीं होता।

४६—किसी अपराध का बदला लेना बहुत आसान है किन्तु उसे क्षमा कर देना बहुत कठिन है। 'क्षमारूपं तपस्विनां' क्षमा तपस्विओं का रूप है।

४७—ज्यों ज्यों सूर्य्य ऊंचा चढ़ता जाता है त्यों त्यों छाया छोटी पड़ती जाती है, इसी प्रकार सद्गुणी जितना ही अधिक

उच्च होता है उतना ही कम वह स्तुति का लोभ करता है तो भी सम्मान के रूपमे उसे विना परिश्रम किये ही पारितोषिक मिल जाता है। सच्चा परिश्रम कभी निष्फल नहीं जाता परन्तु फल की इच्छा करना मनुष्य को गिरा देता है।

४८—जो उचित रीति से मरता है उसका जन्म व्यर्थ नहीं हुआ और न वह व्यर्थ जीवित रहा। जिसको मृत्यु सुख पूर्वक हुई हो उसको सुखी समझना चाहिये।

४९—जो मनुष्य सदा यह सोचता रहता है कि उसे एक दिन अवश्य मरना है उससे अपने जीवन काल में कोई कुकर्म होना मुश्किल है और वह सदा सन्तुष्ट व प्रसन्न रहता है पर जो इसे भूल जाता है वह सदा माया जाल में फंसा रहता है और अपने जीवन कालमे कोई कार्य्य पूरा नहीं कर सकता।

५०—भाग्य और प्रारब्ध पर विश्वास रखना अत्यन्त हानि-कारक है। ऐसा विश्वास उद्योग को शिथिल करता है और उत्साह को बुझा देता है। सच्चा भाग्य क्या है—तड़के सोकर उठना, आमदनी से आधा खर्च करना, अपने काम से मतलब रखना, औरों के काम में दखल न देना, मिहनत से न हारना, विपत्ति में न घबराना, हर बातमें अपने समय और वचन का खयाल रखना, अपने उद्योग पर भरोसा रखना, यही सच्चा भाग्य है। जिसको सफल न करो तो तुम्हारा दोष है।

५१—किसी बुरे खयाल को मनमें न धंसने दो, अगर किसी प्रकार आजाय तो तुरन्त निकाल दो, बुरे खयालों को दूर करने का सहज तरीक़ा यह है कि उनके उठते ही उधर से मनको मोड़

कर किसी अच्छे काम या किसी धार्मिक विषय के चिन्तवन में लगाओ। इस रीति से बुराई की ओर झुकाव घटता जायगा और भलाई की वृद्धि होगी।

५२—अपने चित्त में शुभ कार्य की प्रबलाकांक्षा रखना अच्छा है पर सफलता के प्राप्त करने के लिये साहस, दृढ़ता, परिश्रम से एकाग्र चित्त होकर काम करना आवश्यक है।

५३—विद्या और गुण सिद्धि के द्वार पर पहुँचाते हैं परन्तु स्वभाव और लगन उस द्वार के खोलने की कुञ्जी हैं। सच्चाई, दृढ़ संकल्प, कुशलता, लगातार उद्योग, परिश्रम गभीरता, संयम, भरोसा और नियमपालन अच्छा स्वभाव बनाते हैं।

५४—नीचे की बातें यद्यपि देखने में छोटी मालूम होती हैं पर ससार के परस्पर व्यवहार में बहुत सहायक हैं। यह बातें हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए।

१—चिल्लाकर न बोलो और दूसरा कोई बात करता हो तो उसे काट कर आप न बोलने लगो। यदि कुछ कहना बहुत ही आवश्यक हो तो क्षमा मांग कर कहो।

२—यदि तुम्हारी सलाह पर न चलने से कोई कुछ घाटा सहे और फिर रोता झींकता आवे तो उससे यह न कहो कि मैंने तो तुम्हें मना किया था, अब क्यों मेरे पास आये हो, पर जरूरत इस बात की है कि तुम फिर उसे हमदर्दी के साथ सलाह दो।

३—यदि तुम्हारे पास दो चार आदमी ऐसे आ जांय जिनकी आपस मे जान पहचान नहीं है तो एक दूसरे का अवश्य परिचय करा दो।

४—किसी प्रकार यदि तुम्हारी भूल हो तो अपनी टेक रखने का प्रयत्न न करो, क्षमा मांग लेने में मानहानि नहीं होती। क्षमा की याचना मांगने वाले को और देने वाले दोनों को ही गौरव देती है।

५—सदा यह विचार रक्खो कि दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव किया जाय जैसा तुम दूसरों से अपने साथ कराना चाहते हो।

६—रास्ता चलने में ऐसा न चलो कि मानो वह रास्ता तुम्हारे ही लिये बना है। सहज रीति से बिना किसी को धक्का दिये हुये चलो तो तुम्हे आप मालूम हो जायगा कि दूसरी राह से बिना झगड़े टंटे के जल्दी और आराम से निकल जा सकते हो। स्त्री, बालक, वृद्ध, रोगी और बोझा लिये हुये आदमियो को सदा रास्ता दो। यदि किसी दूसरे की छड़ी, छाता आदि तुमको छू जाय तो इस पर मिजाज न बदलो क्योंकि इसमें तुम्हारी हेठी नहीं होती है और अगर तुम्हारी छड़ी छाता किसी को छू जाय तो फौरन क्षमा मांग लो। दो आदमी यदि साथ आते हो तो उनके बीच में होकर न निकलो।

७—दूसरों की बातचीत सुनने का प्रयत्न न करो और जहां दो आदमी बातचीत करते हों तो बिना बुलाये उनके पास न जाओ।

८—लोगों के सामने किसी खास आदमी से गुप्त रूप से या इशारे में ऐसी बात न करो जो औरों को नहीं बताया चाहते हो।

९—जब कई आदमी इकट्ठे हो तो ऐसी भाषा में बोलो जो सब लोग समझ सकें। जिनकी भाषा तुम बोलो उनसे अपनी अशुद्धियों के लिये क्षमा मांग लो।

१०--यदि किसी प्रसंग की चर्चा के बीच कोई और सज्जन आ जायँ तो आगे कथन के पहिले उनसे थोड़े में पहिले की बात कर उनको प्रसंग समझा दो जिससे वे भी आगे की चर्चा का सिलसिला समझ सकें।

११--परस्पर के नमस्कार वन्दना आदि से न चूको, दूसरे के हाथ उठने की आशा में कभी न रहो, स्वयं हाथ उठाओ। यदि कोई तुमसे किसी का परिचय करावे तो उसको तुरन्त नमस्कार करो। दूसरों के आदर सत्कार में स्वयं खड़े होने में संकोच न करो इसमें तुम्हारा ही सम्मान है।

१२--इस बात का सदा विचार रक्खो कि औरों के सामने किसी का अपमान न होने पावे, एकान्त के बरताव और दूसरों के सामने के बर्ताव में बहुत अन्तर है। अपने छोटे भाई, पुत्र या आश्रित जनों से अकेले में बहुत कुछ कहा जा सकता है जो कि यदि दूसरों के सामने कहा जाता तो उनको नीचा देखना पड़ता।

१३--किसी से मिलने जाओ तो देर तक उसके पास न बैठो उतनी ही देर ठहरो जो काम के लिये या शिष्टाचार की दृष्टि से आवश्यक है। दूसरों का समय नष्ट करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि दूसरे को काम में उद्यत पावो या यह देखो कि और लोग भी उससे मिलने बैठे हैं तो काम जल्दी समाप्त करके चले आओ।

१४--किसी की पीठ पीछे बुराई न करो। तुम्हारी बातें नमक मिर्च सहित उसके कानों तक अवश्य घूम फिर कर पहुँचेगी और उससे शत्रुता हो जायगी।

१५--यदि तुम्हारे साथ कोई भलाई करता है तो उससे अनुचित लाभ उठाने का यत्न न करो, न बार बार जाकर उसका

समय नष्ट करो, न शिफारिश चाहो। अपनी सज्जनता, स्वाभिमान और स्वाधीनता मे यथा संभव अन्तर न आने दो।

१६--किसी के शारीरिक अथवा मानसिक कष्टों पर न हँसो न उसे उसकी याद दिलाओ अपितु उसके दूर करने के यत्न में सहायता करो।

१७--यदि किसी से कोई भूल होगई हो तो लोगों के सामने स्मरण करा कर उसके दिल को न दुखाओ। अगर चेतावनी के लिये कहो तो सहानुभूति पूर्ण शब्दों द्वारा एकान्त मे कहो।

॥ समाप्त ॥